योगविद्या

वर्ष 2 अंक 9
सितम्बर 2013
सदस्यता डाकखर्च – रु 50

स्वर्ण जयन्ती

बिहार योग विद्यालय
के 50 वर्ष

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2013

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर फोटो : श्री स्वामी शिवानन्द की अखिल भारतीय यात्रा

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-8: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

नैतिकता

नैतिकता जीवन का आधार है। नैतिकता-रहित चरित्र 'लवण बिना बहु व्यंजन' समान है। नैतिक आचरण ही तुम्हें अपने पड़ोसियों, मित्रों तथा परिवारजनों के साथ सामंजस्यपूर्वक रहना सिखाएगा। तुम्हारा हृदय पवित्र और शुद्ध बनेगा। प्रभु की कृपा बरबस तुम्हारी ओर आकर्षित होगी, तुम दिव्य आनन्द से आप्लावित हो जाओगे।

सदाचारी जीवन से बढ़कर अन्य कोई धन नहीं। दीन-दु:खी जनों की सेवा-सहायता के लिए किए गए सत्कर्मों से ही सदाचारी जीवन का निर्माण होता है। सदाचार का बड़ा महत्त्व है। तुच्छ सांसारिक प्रलोभनों के लिए इसे कभी मत छोड़ना। नैतिकता के मार्ग से कभी च्युत मत होना, भले ही तुम्हारा जीवन ही दाँव पर क्यों न लगा हो। तभी और केवल तभी, तुम सच्ची सुख-शांति प्राप्त कर, समस्त भयों और आशंकाओं से मुक्त हो पाओगे।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित

मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 2 अंक 9 • सितम्बर 2013
(प्रकाशन का 51 वाँ वर्ष)

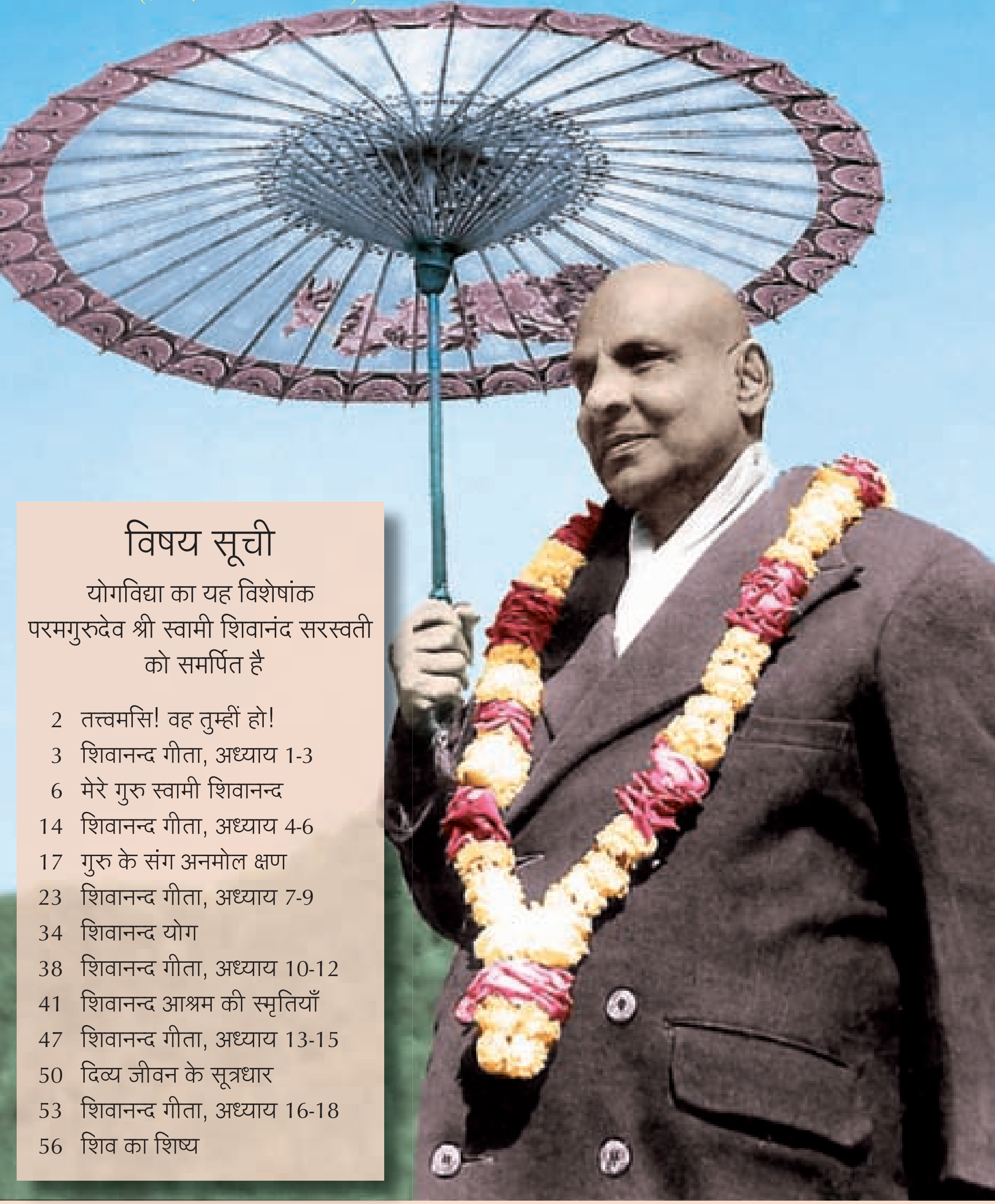

विषय सूची

योगविद्या का यह विशेषांक
परमगुरुदेव श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती
को समर्पित है

2 तत्त्वमसि! वह तुम्हीं हो!
3 शिवानन्द गीता, अध्याय 1-3
6 मेरे गुरु स्वामी शिवानन्द
14 शिवानन्द गीता, अध्याय 4-6
17 गुरु के संग अनमोल क्षण
23 शिवानन्द गीता, अध्याय 7-9
34 शिवानन्द योग
38 शिवानन्द गीता, अध्याय 10-12
41 शिवानन्द आश्रम की स्मृतियाँ
47 शिवानन्द गीता, अध्याय 13-15
50 दिव्य जीवन के सूत्रधार
53 शिवानन्द गीता, अध्याय 16-18
56 शिव का शिष्य

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

तत्त्वमसि! वह तुम्हीं हो!

नेति के प्राचीर से उस पार कोई अंशुमाली
प्राणियों में प्राण बनकर निहित जिसकी रश्मिथाली।
एक ज्योतिर्ज्योति जो, हे वत्स, जानो वह तुम्हीं हो॥

जगत् के चलचित्र का आधारगत परिधान जो है
नास्ति के नास्तित्व में अस्तित्व का अभिधान जो है
सत्य जो, सर्वेश जो, हे वत्स, जानो वह तुम्हीं हो॥

जो विधाता का विधायक एक अधिपति है अखिल का
जो नियति का भी नियामक एक नायक है निखिल का
वह न तुमसे इतर कोई, वत्स जानो वह तुम्हीं हो॥

पंचमुख की आरती जिसके समक्ष दिखा रहे तुम
अर्चना की भारती जिसके समक्ष सुना रहे तुम
उस शिला का देव मिथ्या, सत्य जो है वह तुम्हीं हो॥

एक अभिनेता बना, अभिनीत भी, अभिनय तथा है
एक मायावी बना, व्यामोह, मायामय तथा है
कृत्स्न नाट्य-प्रपञ्च जिसका कार्य, जानो वह तुम्हीं हो॥

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

शिवानन्द गीता – प्रथमोऽध्याय:

अठारह पत्रों में वर्णित स्वामी शिवानन्द जी की यह संक्षिप्त आत्मकथा वास्तव में एक अमूल्य साधना-प्रदीपिका है, जो आध्यात्मिक जीवन के अनेक ज्ञात-अज्ञात आयामों को प्रकाशित कर, साधकों को उस महामानव का अनुकरण करने के लिए प्रेरित करती है, जिसकी सम्पूर्ण महिमा और गरिमा का वर्णन वस्तुत: वाणी-विलास के परे है।

ॐ

1 जनवरी, 1946

मेरा जन्म अप्पय्या दीक्षित के कुल में 8 सितम्बर 1887 को भरणी नक्षत्र में दक्षिण भारत के पट्टामडई ग्राम में हुआ। मेरा पिता पी.एस. वेंगू अय्यर एवं माता पार्वती अम्मल थीं।

लड़कपन में मैं बहुत शरारती था। एस.पी.सी. कॉलेज, त्रिची से मैंने चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की, और इसके बाद दस वर्षों तक मलाया देश में चिकित्सक के रूप में कार्य किया। सन् 1924 में ऋषिकेश में मैंने संन्यास दीक्षा ली।

पन्द्रह वर्षों तक मैंने गहन तप एवं ध्यान किया। दस वर्षों तक मैंने विभिन्न स्थानों पर सत्संग और कीर्तन कार्यक्रम किये। सन् 1936 में दिव्य जीवन संघ एवं सन् 1945 में अखिल विश्व धर्म संसद की स्थापना की।

शिवानन्द गीता – द्वितीयोऽध्यायः

ॐ

2 जनवरी, 1946

अपने बाल सुलभ स्वभाव के कारण मैं सबसे घुल-मिल जाता हूँ, सबसे एकाकार हो जाता हूँ।

मैं सदा आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण रहता हूँ और दूसरों को भी प्रसन्न एवं प्रफुल्लित रखता हूँ।

मैं विनोदशीलता से ओत-प्रोत हूँ, जिसके द्वारा मैं आनन्द के साथ-साथ शिक्षा और ज्ञान भी चहुँ ओर बिखेरता हूँ।

मैं सबका सम्मान करता हूँ। मैं सभी को पहले नमस्कार करता हूँ।

मैं मधुरभाषी एवं द्रुतगामी हूँ।

चलते हुए और काम करते हुए भी मैं हमेशा जप एवं ध्यान करता रहता हूँ।

शिवानन्द गीता – तृतीयोऽध्यायः

ॐ

3 जनवरी, 1946

मैं सदा से कठोर परिश्रमी रहा हूँ। कर्म में मेरी गहन रूचि, तत्परता और तन्मयता है। मैं किसी भी काम को पूरा होने से पहले नहीं छोड़ता। हर काम को मैं तत्क्षण और तत्स्थान पूरा कर देता हूँ। काम-काज में प्रमाद मुझे कतई स्वीकार नहीं।

अपने भीतर उफनते सेवा के प्रबल भाव का मैं कदापि दमन नहीं कर सकता। सेवा विहीन जीवन की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। सेवा करते हुए मुझे अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है। सेवा के द्वारा मेरी आंतरिक शुद्धि हुई है, मेरा आध्यात्मिक उत्थान हुआ है।

मैं दूसरों से काम करवाना भली-भाँति जानता हूँ। करूणा, सेवा, आदर और प्रेम के माध्यम से मैं दूसरों को कर्म हेतु प्रेरित करता हूँ।

मेरे गुरु स्वामी शिवानन्द

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

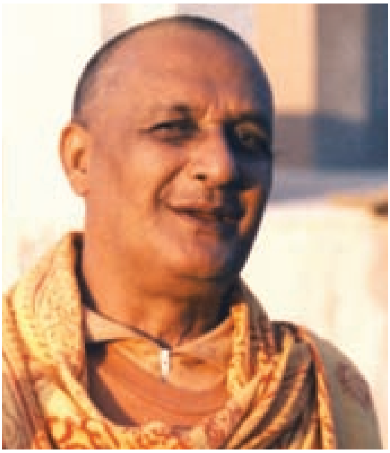

संसारभर में स्वामी शिवानन्द जी की जन्म-शताब्दी मनायी जा रही है। इस अवसर पर समस्त योगप्रेमी उन महान् आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे। वे अपने भौतिक शरीर से तो विद्यमान नहीं हैं, लेकिन अगणित व्यक्तियों के हृदय-मन्दिर में उनकी मानसिक मूर्त्ति सदा-सर्वदा के लिए प्रतिष्ठित है। असंख्य साधक उनके द्वारा उद्घाटित ज्ञान के लिए उनके ऋणी हैं। दिव्य जीवन संघ के लिए ऐसी महान् विभूति की जन्मशताब्दी मनाना नितान्त उचित ही है।

किसी कवि ने कहा है, 'महापुरुषों के जीवन की घटनाएँ हमें अपने जीवन को उदात्त बनाने की प्रेरणा देती हैं।' समय की रेत पर महापुरुष अपने चरण-चिह्न छोड़ते जाते हैं। परन्तु सभी इन चरण-चिह्नों को नहीं देख पाते हैं। इसका एक कारण है – उनका अज्ञान-पवन इन चिह्नों को मिटा देता है। हम अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं क्योंकि हम स्वयं इन चरण-चिह्नों को देख पा रहे हैं और उनका अनुगमन कर रहे हैं।

स्वामी शिवानन्द जी ने एक पूर्ण जीवन व्यतीत किया। ईसा मसीह के स्तर के महान् सन्त; उच्चस्तरीय प्रशासक; पूर्णतः विरक्त संन्यासी; दयालुता, प्रेम तथा दानशीलता के भावों से परिपूरित महामानव; भावुक भक्त; असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न दार्शनिक; कठोर अनुशासनप्रिय, परन्तु साथ ही जड़-चेतन सभी प्राणियों पर करुणा की वर्षा करने वाले महापुरुष – यह सब एक साथ थे वे।

ऐसे ही महान् व्यक्ति हमारे जीवन का अनुकरणीय आदर्श बन सकते हैं। हममें से अधिकांश दैनिक जीवन की समस्याओं से ग्रस्त हैं; अपने मनोविकारों के प्रवाह में हम बहे जा रहे हैं तथा भावनात्मक जीवन के उतार-चढ़ावों ने हमें निराश कर दिया है। निष्कपट तथा सच्चे मनुष्यों के समक्ष यह प्रश्न निश्चित ही उठ खड़ा होता है– इन सीमाओं के रहते हुए कैसे हम जीवन के चरमोत्कर्ष पर पहुँचें? जीवन की निष्ठुरता से निराश हुए ऐसे ही मनुष्यों के लिए स्वामी शिवानन्द एक प्रकाशस्तम्भ के समान थे। स्वामी जी के बारे में श्रवण करना ही आनन्द है; उनके सम्बन्ध में सोचना ही योग है; उनकी चर्चा करना ही समय का सदुपयोग है। यद्यपि उनका एक

भौतिक शरीर था, परन्तु उनकी आत्मा भौतिकता से कोसों दूर थी। उनकी उपस्थिति मात्र से ही आन्तरिक जागरूकता विकसित होने लगती थी।

उपनिषदों की एक कथा में शिष्य गुरु से पूछता है, 'मनुष्य किस प्रकार गतिमान होता है?' गुरु ने उत्तर दिया, 'सूर्य के प्रकाश में।' शिष्य ने पूछा, 'परन्तु जब सूर्य अस्त हो जाता है तब?' गुरु ने कहा, 'चन्द्रमा के प्रकाश में।' शिष्य ने पुन: प्रश्न किया, 'जब सूर्य और चन्द्र दोनों ही अस्त हो जाते हैं, उस समय वह कैसे गतिमान होता है?' गुरु का उत्तर था, 'तारों के प्रकाश में।' शिष्य ने फिर पूछा, 'जब सूर्य, चन्द्र, तारे, कोई भी नहीं होते, तब?' गुरु ने कहा, 'तब वह अपने ही प्रकाश में गतिमान होता है।'

यह कौन-सा प्रकाश है? जब मन विकारों से ग्रस्त हो जाता है, जब बुद्धि भ्रमित हो जाती है, जब हमारी अपनी ही आस्थाएँ हमें निराश करने लगती हैं, जब हमारी अपनी ही धारणाएँ हमारे लिए अवरोधक सिद्ध होती हैं, उस स्थिति में हमारे लिए अपनी चेतना के स्तर को उन्नत करना अनिवार्य हो जाता है, अपनी आत्मा को जाग्रत करना आवश्यक हो जाता है। इस उपलब्धि के लिए किसी सद्गुरु का मार्गनिर्देशन प्राप्त करना अपरिहार्य है। स्वामी शिवानन्द जी इसी प्रकार के सद्गुरु थे। अपने आन्तरिक प्रकाश को जाग्रत करने के आकांक्षी साधकों के लिए उनके जीवन-सन्देश तथा उपदेश अंधेरे में ज्योति के समान हैं।

अत्युत्तम महामानव

अन्य सन्त-महात्माओं की तुलना में स्वामी शिवानन्द जी का एक अलग ही व्यक्तित्व था। उन्होंने कभी भी चमत्कारी गुरु या उपदेशक या धर्मगुरु की तरह व्यवहार नहीं किया। वे एक साधारण व्यक्ति की तरह रहे तथा अगणित सद्गुणों के जाज्वल्यमान उदाहरण बन कर चमके।

मैं सोचता हूँ कि सन्त बनने की अपेक्षा मानव बनना अधिक महत्त्वपूर्ण है। गुरु बन जाना या दूसरों से मान-सम्मान प्राप्त करना सरल है, परन्तु मानव बनना कठिन। दान कठिन है, प्रेम करना कठिनतर है तथा बोध प्राप्त करना कठिनतम। आज मानव अपनी मूलभूत मानवता को ही नहीं समझ पा रहा है। मानव यदि मानव बन सके, तो वह सब कुछ बन सकता है। मानव बनने के लिए उसे अपने व्यक्तित्व के आसुरी पक्ष का विलोपन करना पड़ेगा। बाँस की बाँसुरी को बिल्कुल खाली करने के बाद ही उससे मोहक स्वर उत्पन्न किया जा सकता है। इसी प्रकार आपको भी स्वयं को रिक्त करना पड़ेगा। आपको अपमान तथा आलोचना सहन करने के लिए तथा विभिन्न मनोविकारों के राक्षसों के बीच विभीषण बन कर रहने के लिए तैयार होना पड़ेगा। अपने भय को समाप्त करके आपको दूसरों के द्वारा उत्पीड़ित होने के लिए भी तैयार होना पड़ेगा। दूसरों से आपको प्रेम या सम्मान प्राप्त करने की आशा नहीं रखनी चाहिए।

जब लोग प्रेम की चर्चा करते हैं, तब मुझे हँसी आती है। अभी तक मैं किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिल पाया हूँ, जो प्रेम का वास्तविक अर्थ समझता हो। हाँ, पर मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि स्वामी जी के व्यक्तित्व से प्रेम की किरणें फूटती थीं। वे भावुक कदापि नहीं थे। वे थे नितान्त शान्त, अक्षुब्ध, अनुद्विग्न तथा पूर्णत: निर्लिप्त। मेरी दृष्टि में वे एक अत्युत्तम महामानव थे। मैंने ईसा मसीह को कभी नहीं देखा, परन्तु मैंने स्वामी शिवानन्द को देखा है और इसी कारण मैं विश्वास करता हूँ कि ईसा मसीह अवश्य ही इस धरती पर कभी आये होंगे। स्वामी शिवानन्द एक ऐसे महापुरुष थे, जिनके पास करुणा का असीम कोष था। उनका स्वभाव मधुर था तथा वे सदैव मुस्कुराते रहते थे। नहीं, यह कहना पर्याप्त न होगा, वे स्वयं मधुरता थे, स्मित के मूर्त्त रूप ही थे।

उन्होंने जो कुछ किया, केवल इस उद्देश्य से कि उससे दूसरों का कल्याण हो। वे डिक्टेटर नहीं थे, न कभी अपने शिष्यों की कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप करते थे। वस्तुत: जिस प्रकार शिष्य अपने गुरु के चरणों का स्पर्श करते हैं, उसी प्रकार वे भी शिष्यों के चरणों का स्पर्श किया करते थे। आश्रमवासी तथा प्रशासक के रूप में मैंने कई बार गलतियाँ की थीं। मुझे लगता कि वे मुझे बुलायेंगे और मेरी भर्त्सना करेंगे या सही-गलत के बारे में समझायेंगे, लेकिन उन्होंने कभी भी मुझे बुलाकर मेरी गलतियों के बारे में एक शब्द तक नहीं कहा। मैं जब भी उनके पास गया, उन्होंने सामान्य ढंग से वार्त्तालाप किया – मेरी गलतियों के बारे में कभी चर्चा नहीं की।

वे कहा करते थे – प्रत्येक व्यक्ति में एक दिव्य स्फुलिंग रहता है। दूसरों के प्रति उनकी धारणा बड़ी अनूठी थी। यदि कोई अपनी आलोचना से उद्विग्न हो जाता, तो वे इस प्रकार समझाया करते थे – यह एक दिव्य परीक्षा है। जब तुम लोहे का कोई टुकड़ा खरीदते हो, तब अधिक जाँच-परख नहीं करते। जब तुम सोना खरीदते हो, तब सावधानीपूर्वक उसका निरीक्षण करते हो और जब तुम हीरा खरीदते हो, तो जो भी हीरा सामने पड़ जाये, उसे उठा नहीं लेते। इसी प्रकार, जब परमात्मा तुम्हें अपने लिए चुन रहा है, वह तुम्हारी जाँच-परख करेगा ही। तुम्हारे कर्मों या तुम्हारे दोषों के कारण तुम्हें आलोचना का सामना नहीं करना पड़ रहा है। यह तो तुम्हारी दिव्य परीक्षा है। उसमें उत्तीर्ण हो जाओगे, तो तुम्हें उच्चतर प्रज्ञा का पुरस्कार मिलेगा।

दो, दो, अवश्य दो

स्वामी शिवानन्द जी ने मलेशिया में चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ किया था। ऋषिकेश आने के पश्चात् वे अध्यात्म-जीवन में पूर्णत: निमग्न हो गये। वे इतने निष्कपट तथा सच्चे थे कि आसपास रहने वाले संन्यासी उनसे अत्यधिक प्रभावित रहते थे। कभी-कभी वे अपनी दैनिक भिक्षा से कुछ रोटियाँ बचा कर एक बक्से में रख लेते थे। जब पर्याप्त संख्या में रोटियाँ एकत्र हो जातीं, तब वे अपनी कुटिया का

द्वार बन्द करके कई-कई दिनों के लिए अपनी व्यक्तिगत साधना में रत हो जाते थे। कभी-कभी अर्धरात्रि के समय सीने तक गंगा-जल में खड़े-खड़े उन्हें ॐ का उच्चारण करते देखा जाता था।

अध्यात्म-जीवन के प्रति अपने पूर्ण समर्पण के कारण वे सभी संन्यासियों के प्रिय बन गये थे। प्रतिक्रियास्वरूप कुछ दुर्जन उन्हें उत्पीड़ित करने लगे, यहाँ तक कि उन्हें चोट भी पहुँचाने लगे। उनके प्रति स्वामी जी का रुख असाधारण तथा अतिमानवीय था। वे कहा करते थे, 'यदि कोई तुम्हें ठोकर मारे, तो तुम प्रेम दो।' इसी सिद्धान्त को वे व्यवहार में लाते थे। बाद में जब स्वामी जी ने ख्याति अर्जित कर ली थी, वे उन्हीं दुर्जनों को खूब मान-सम्मान दिया करते थे।

स्वामी जी अत्यन्त उदार थे। कोई कुछ भी माँगता, वे अवश्य देते थे। उनका सिद्धान्त था – दो, दो, अवश्य दो। यदि उन्हें पता भी होता कि माँगने वाला व्यक्ति सुपात्र नहीं है, तो भी वे इस पर कोई ध्यान नहीं देते थे। वे केवल इतना ही कहते थे– 'वह उसका कर्म है, और यह मेरा।' वे उदारतापूर्वक भोजन, धन, पुस्तक, वस्त्र आदि वितरित किया करते थे। जब कभी कोई कहता, 'स्वामी जी, यह व्यक्ति दुष्ट प्रकृति का है। इसे कुछ भी न दें।' तब वे कहते थे, 'भगवान ने मुझे उसे ही देने के लिए दिया है। धन, आश्रम, कुछ भी मेरा नहीं है।'

ज्ञानी तथा भक्त

स्वामी शिवानन्द जी वेदान्त-दर्शन में आस्था रखने वाले संन्यासी थे। वेदान्त-दर्शन 'अहं ब्रह्मास्मि' के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। यह मूर्त्तिपूजा का समर्थन नहीं करता। यह शुद्ध अद्वैतवादी दर्शन है। इसके अनुसार सत्य नाम-रूप-रहित है तथा समस्त प्रकार के अनुभव मन में ही होते हैं। स्वामी शिवानन्द जी भक्त तथा परमतत्त्व के दर्शन का प्रतिपादन करने वाले शुद्ध ज्ञानी – दोनों ही थे। वे कहा करते थे, 'भगवद्भक्ति तथा भगवन्नाम-उच्चारण ही सांसारिक चेतना के अवरोधों से मुक्ति दिला सकते हैं।' भगवन्नाम में उनकी आस्था का अनूठा प्रमाण यह है कि वर्ष 1943 में उन्होंने शिवानन्द आश्रम में भगवन्नाम के अखण्ड कीर्तन का शुभारम्भ किया। उस समय तक आश्रम में एक हॉल ही निर्मित हो पाया था और हम सब कुल मिला कर सात-आठ संन्यासी थे। हॉल में एक दीपक जला दिया गया था; वह अखण्ड रूप से जला करता था। प्रत्येक संन्यासी को दो-दो घण्टे की पाली में कीर्तन करना होता था। कीर्तन के लिए स्वामी जी ने महामन्त्र को चुना था। उन्होंने उसकी धुन भी निश्चित कर दी थी।

आश्रम के उद्घाटन के अवसर पर स्वामी जी ने कहा था, 'यह कीर्तन तब तक जारी रहेगा, जब तक संसार का अस्तित्व है।' यह सुनकर हमलोगों को बहुत आश्चर्य हुआ था – अखण्ड कीर्तन की यह अन्तहीन अवधि! और, सचमुच आज भी यह विशिष्ट कार्यक्रम आश्रम के विभिन्न कार्यक्रमों का केन्द्र-बिन्दु है।

निश्छल व्यक्तित्व

स्वामी शिवानन्द प्रत्येक व्यक्ति पर विश्वास रखते थे। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि कोई व्यक्ति खराब भी हो सकता है। उन्होंने कभी दूसरों के समक्ष अपने को किसी महान् स्वामी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। उनमें न अहंमन्यता थी और न कोई आकांक्षा। अगणित लोग उनके पास आते थे तथा उनसे अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करते थे, परन्तु वे सदैव यही कहते थे– 'यह भगवान की कृपा है।' उनके भक्त कहते थे, 'स्वामी जी, आप सिद्ध पुरुष हैं। महान् आत्मा हैं। आपके आशीर्वाद से मेरी सभी कठिनाइयाँ दूर हो गयीं।' वे उत्तर देते– 'नहीं, नहीं, यह ईश्वर की कृपा है और आपका प्रारब्ध है, जिसने आपकी सहायता की है।'

वे पूर्ण भक्त थे। उनका हृदय निष्कपट था। जब कोई व्यक्ति उन्हें अपनी कठिनाइयों के बारे में लिखता या स्वयं मिलकर अपनी समस्याएँ उनके समक्ष रखता था, वे तुरन्त अपने आस-पास उपस्थित लोगों से बैठ कर मंत्र-जप करने के लिए कहते। मंत्र पर उनकी इतनी अधिक आस्था थी कि जप की समाप्ति के तुरन्त बाद वे सम्बन्धित व्यक्ति को पत्र लिखवाते– हमने आपके लिए प्रार्थना की है और आपकी समस्याएँ सुलझ जायेंगी। उनकी मंत्र पर अगाध आस्था थी– न होती तो वे कैसे इस प्रकार किसी को लिख सकते थे?

निष्कपटता में बहुत शक्ति होती है। इसी कारण सन्तों के जीवन में चमत्कार घटित होते हैं। निष्कपटता बचकानी प्रवृत्ति नहीं है। यह व्यक्तित्व में शुद्धता का पुष्पित होना है। निष्कपट होने के लिए कुछ 'करना' नहीं पड़ता। बस, जो कुछ अपने पास है, उससे मुँह मोड़ लेना होता है– बुद्धि, धन, शक्ति, प्रतिष्ठा तथा सभी तरह की आस्थाएँ; यह मान लेना होता है कि मैं कुछ नहीं हूँ। जब आप यह अभिवृत्ति अपना लेते हैं, तब यह निष्कपटता आपकी आस्था की आधारशिला बन जाती है। स्वामी शिवानन्द जी में यह आस्था न केवल विद्यमान थी, बल्कि प्रबल और जीवन्त थी।

दूसरों से सीखने का सद्गुण

शिवानन्दाश्रम के अन्तेवासी के रूप में मैं बृहदारण्यक उपनिषद् की टीका लिख रहा था। संस्कृत तथा दर्शन का बौद्धिक ज्ञान-भण्डार मेरे पास था, परन्तु फिर भी

इस कार्य में मुझे कठिनाई हो रही थी। जब-जब अपनी कठिनाइयाँ लेकर मैं स्वामी जी के पास जाता, तब-तब वे मुझे पूज्य तपोवनम् जी महाराज के पास भेज दिया करते थे। स्वामी तपोवनम् जी महाराज स्वामी जी के शिष्य नहीं थे, न वे ऋषिकेश में ही निवास करते थे। वे गंगोत्तरी के मार्ग पर स्थित उत्तरकाशी में रहा करते थे। वे संस्कृत के विद्वान् तथा उपनिषदों के प्रबुद्ध ज्ञाता थे।

अपने जीवन-काल में स्वामी शिवानन्द ने तीन-चार सौ पुस्तकें लिखीं। जब तक मैं उनके सान्निध्य में रहा, वे लगभग 250 पुस्तकें लिख चुके थे। परन्तु वे अपने को सर्वज्ञ नहीं मानते थे। यदि गुरु शिष्य की ज्ञान-पिपासा के अनुरूप उसे किसी उपयुक्त अधिकारी व्यक्ति के पास नहीं भेजता तो वह शिष्य को भ्रम में ही डालता है। स्वामी शिवानन्द जी मुझे स्वयं मार्गदर्शन दे सकते थे, परन्तु वे मेरे शुभचिन्तक थे और उन्होंने मुझे स्वामी तपोवनम् जी महाराज के पास ही भेजना उचित समझा।

जब कभी स्वामी तपोवनम् जी ऋषिकेश आकर ठहरते, स्वामीजी मुझसे कहते, 'स्वामी तपोवनम् के पास जाओ और उनसे कुछ सीख कर आओ।' तब मैं उनके पास जाता, दर्शन और संस्कृत-व्याकरण-सम्बन्धी अनेक शंकाओं को लेकर। लौटते समय स्वामीजी मुझे प्रतीक्षा करते हुए मिलते। वे कहते, 'तुमने क्या-क्या पूछा और उन्होंने क्या-क्या बतलाया?' मैं उन्हें सब-कुछ बता देता। जो कुछ मैं बताता, स्वामी जी उसे नोट कर लेते और उसे टाइप करवा लेते थे।

प्रबुद्ध किन्तु विनम्र

इस संसार में ऐसे भी व्यक्ति हैं जो यह समझते हैं कि वे सब-कुछ जानते हैं। दूसरों से सीखने के रचनात्मक प्रभावों से वे अपरिचित हैं। यदि आप उनसे किसी सद्यः अर्जित ज्ञान की चर्चा करें, तो वे कहेंगे, 'इसे तो मैं पहले ही जानता था।' यह मानव-स्वभाव की एक विचित्रता है। यह उसकी अन्तर्निहित अहंमन्यता का ही एक रूप है। और, जहाँ अहंमन्यता होगी, वहाँ अज्ञान अवश्य ही होगा।

ईसाइयों, मुसलमानों तथा हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों में एक स्वर से कहा गया है – अहंमन्यता का प्रबोधन से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। अहंमन्यता शैतान की सन्तान है। जहाँ प्रबोधन होगा, वहाँ विनम्रता होगी। आप जितने अधिक प्रबुद्ध होंगे, उतने ही अधिक विनम्र बन जायेंगे। सन्त-महात्माओं के ही लिए नहीं; कलाकारों, कवियों, राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों – सभी के लिए यह बात सत्य है। आप जितना ही अधिक प्रबोधन प्राप्त करेंगे, अपने बारे में उतना ही कम सोचेंगे। जब आप यह समझने लगेंगे कि आप कुछ नहीं हैं, तब अहंमन्यता आपके पास कैसे टिक पायेगी?

न्यूटन अपनी उपलब्धियों के बारे में कहा करते थे, 'मैं तो किनारे पड़े पत्थर ही बटोर पाया हूँ, सागर तो अभी अछूता ही पड़ा है।' जो व्यक्ति प्रबुद्ध तथा सत्यनिष्ठ होता है, वह प्रत्येक प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करने के लिए तैयार रहता है – ज्ञान

के स्रोत चाहे सन्त-महात्मा हों चाहे पापीजन! महात्मा तथा पापी के वर्गीकरण मात्र सामाजिक स्तर तक ही मान्य होते हैं। एक माता के लिए इस बात का क्या महत्त्व कि उसकी सन्तान पुत्र है या पुत्री; स्वस्थ है या रोगी; महात्मा है या पापी?

सन्त-महात्मा कभी दूसरों की आलोचना नहीं किया करते। आसक्तियों या पूर्वाग्रहों के कारण उन्हें कभी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। आध्यात्मिक स्तर पर ही वे परस्पर एक-दूसरे को प्रभवित करते हैं। वस्तुत: सन्तों के विषय में कुछ कहना अत्यन्त कठिन है। वे हिमशैलों की तरह होते हैं, जिनका थोड़ा-सा ही भाग दृष्टिगोचर होता है; शेष भाग तो जल में ही डूबा रहता है। इसी कारण स्वामी शिवानन्द जी के व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन करना निश्चित ही सम्भव नहीं है। उनके साथ मैं अल्पकाल तक ही रहा, परन्तु उन्होंने मेरी समूची जीवनधारा को रूपान्तरित कर दिया।

योग तरी तीरे-तीरे

सन् 1956 में एक दिन स्वामी शिवानन्द जी ने मुझे बुलाया और पूछा, 'तुम क्या साधना करते हो?' मुझे आश्रम में रहते हुए बारह साल हो चुके थे। इस अवधि में एक बार भी उन्होंने मुझसे यह प्रश्न नहीं पूछा था। मैं आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास किया करता था; परन्तु गुरु के आदेश से नहीं। यह मेरी व्यक्तिगत रुचि की बात थी। मंत्र-जप भी मैंने बहुत बड़ी संख्या में किया था। साथ ही अहर्निश कर्मयोग में भी डूबा रहा था।

मैंने उत्तर दिया, 'आसन, प्राणायाम तथा मंत्रजप करता हूँ।' कुछ अन्य चीजें जो मैंने अपनी साधना में सम्मिलित कर रखी थीं, उनके बारे में भी मैंने बताया।

'तुम क्रियायोग का अभ्यास नहीं करते?' उन्होंने पूछा।

'जी नहीं', मैंने कहा, 'मैंने इसके बारे में सुना अवश्य है, परन्तु जानता कुछ भी नहीं हूँ।'

वे मुझे अपने कुटीर में ले गये और दस मिनट के अन्दर मुझे क्रियायोग सिखला दिया। फिर उन्होंने मुझे 108 रुपये दिये और कहा, 'अब तुम आश्रम छोड़ सकते हो। अब यह स्थान तुम्हारे लिए नहीं है। भ्रमण करो और द्वारे-द्वारे, तीरे-तीरे योग का सन्देश प्रचारित-प्रसारित करो।' मैंने आश्रम छोड़ दिया और कई वर्षों तक भारत और समीपवर्ती देशों में परिव्राजन करता रहा।

आन्तरिक जागरण

सन् 1963 में 14 जुलाई को एकाएक मेरे आन्तरिक जागरण ने मुझे झकझोर दिया। उस समय मैं मुंगेर, बिहार में था लेकिन अपने मानसपटल पर मैं देखने लगा कि मैं ऋषिकेश में हूँ। गंगातट पर पानी का एक जहाज मेरी ओर चला आ रहा है। स्वामी

शिवानन्द जी उस जहाज की छत पर खड़े हैं और नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोड़े हुए हैं। तुरहियाँ बज रही हैं। शंख-ध्वनि हो रही है। ढोल-मृदंगों की थापें सुनायी पड़ रही हैं। जहाज मेरे बहुत निकट आ गया है। जल की धारा में इतना वेग है कि जहाज का फ्लाई-व्हील तेजी से मेरे सिर, गर्दन और शरीर पर पानी उछाल रहा है...।

झाँकी समाप्त हुई। मैं समझ गया कि स्वामी शिवानन्द जी ने अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया है और इस प्रकार दर्शन देकर उन्होंने मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान किया है। उसी दिन मैंने अपना झोला सँभाला, स्टेशन पहुँचा, टिकट खरीदा और ऋषिकेश के लिए प्रस्थान किया। मेरा अनुमान ठीक निकला। ऋषिकेश पहुँचने पर मुझे पता चला कि स्वामी जी इस संसार से विदा ले चुके हैं।

और, तब से लेकर आज तक प्रति वर्ष कम-से-कम एक-दो बार मैं अन्दर से जाग उठता हूँ। उस समय मुझे जो अनुभव होता है, वह नितान्त सत्य, मूर्त्त तथा गहन होता है। वह सपना नहीं होता, कल्पना नहीं होता और सम्मोहन भी नहीं होता। वह बिल्कुल वास्तविक होता है। अपने इस अनुभव-क्षेत्र में मैं स्वामी जी के दर्शन करता हूँ, उनसे वार्त्तालाप करता हूँ और उनसे स्पष्ट मार्गदर्शन प्राप्त करता हूँ।

मेरा जीवन असाधारण रहा है। मुझे कभी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। इसलिए जब मैं गुरु के दर्शन करता हूँ, तब मेरे मन में किसी प्रकार की कामना नहीं होती। कई बार मैंने सोचा है कि मैं उनसे कुछ माँगूँ। लेकिन माँगूँ तो क्या? उन्होंने मुझे सब कुछ दिया है – और जो नहीं दिया उसके बारे में लगता है कि वह मेरे पास होना भी नहीं चाहिए। स्वामी शिवानन्द जी के साथ मेरे सम्बन्धों का मुख्य लक्ष्य आत्मानुसन्धान ही रहा है। उनके सान्निध्य में व्यतीत किये गये बारह वर्षों की अवधि में अपनी अहंमन्यता का नाश करके, मनोवेगों को शान्त करके, कामनाओं के प्रवाह को नियंत्रित करके तथा अपने अज्ञान का नाश करके मैंने अपने आन्तरिक दर्पण की मलिनता दूर की है। गुरु-सेवा किये बिना यह कैसे सम्भव हो पाता?

'स्वामी शिवानन्द जन्मशताब्दी स्मृतिग्रंथ', 1987 से साभार

मैं अपने गुरु के ऋण से उऋण तभी हो सकता हूँ जब मैं उनके उपदेश, उनका सन्देश जन-जन के हृदय में भर दूँ और स्वयं इस दारुण जगजीवन पथ पर उनके चरणारविन्द की विभूति के सौरभ में ओतप्रोत हो, उनकी तपोल्लसित-स्निग्ध-चन्द्रच्छाया में, महानिर्वाण, परमधाम तथा सद्गति की ओर चिरन्तन-युगों के साथ चलता रहूँ और अविश्रान्तगत्या चलता रहूँ।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शिवानन्द गीता – चतुर्थोऽध्यायः

ॐ

4 जनवरी, 1946

मैं नियमित रूप से आसन एवं व्यायाम करता हूँ। आज तक मैं शीर्षासन, सर्वांगासन तथा अन्य आसनों का प्रतिदिन अभ्यास करता हूँ। साथ ही प्राणायाम का भी नियमित अभ्यास करता हूँ। इससे मुझे अनुपम स्वास्थ्य एवं ऊर्जा प्राप्त होती है। प्रतिदिन मैं भजन हॉल का दौड़कर चक्कर लगाता हूँ।

मैं किसी विशेष, सुसज्जित आसन पर बैठकर प्रेरक और प्रभावशाली व्याख्यान नहीं दे सकता। ऐसा आसन मुझे शूलवत् चुभता है। मैं उस आसन को दूर हटाकर या तुरंत खड़े होकर अपना व्याख्यान प्रारम्भ करता हूँ। विभिन्न धार्मिक सम्मेलनों और कार्यक्रमों की अध्यक्षता करते हुए भी मैंने कभी ऐसे विशेष आसनों का उपयोग नहीं किया।

मुझे देने में आनन्द आता है। मैं सदा दान करते रहता हूँ।

शिवानन्द गीता – पंचमोऽध्यायः

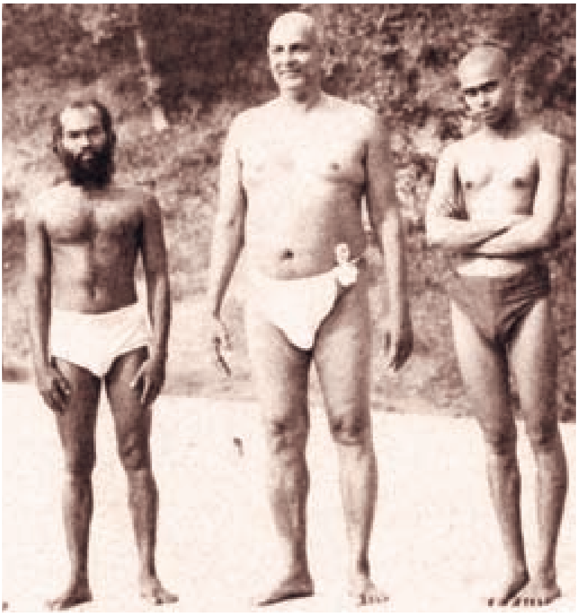

ॐ

5 जनवरी, 1946

मैं स्वयं को सदा तरूण अनुभव करता हूँ जबकि इस समय मैं उनसठ वर्ष का हूँ। मैं ऊर्जा, स्फूर्ति एवं प्राणशक्ति से परिपूर्ण हूँ। मैं सदा मस्त रहता हूँ, और इस मस्ती में नाचता-गाता, उछलता-कूदता रहता हूँ। मैं इतना तंदरूस्त और बलिष्ठ हूँ कि हर तरह का भोजन पचा लेता हूँ।

सतत् कार्य करना, पढ़ना एवं लिखना मेरे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। पहाड़ों या समुद्री तटों पर जाकर विश्राम करना या छुट्टियाँ बिताना मेरा स्वभाव नहीं है। कार्य-परिवर्तन ही मेरा विश्राम है। गहन ध्यान मुझे प्रचुर विश्रांति प्रदान करता है।

कर्म मुझे हर क्षण प्रसन्न रखता है। सेवा मेरे आनन्द का स्रोत एवं लेखनी मेरी मस्ती की निर्झरी है। ध्यान मुझे ऊर्जावान् एवं स्फूर्तिमान् बनाता है। कीर्तन मुझमें नवजीवन का संचार करता है।

शिवानन्द गीता – षष्ठोऽध्यायः

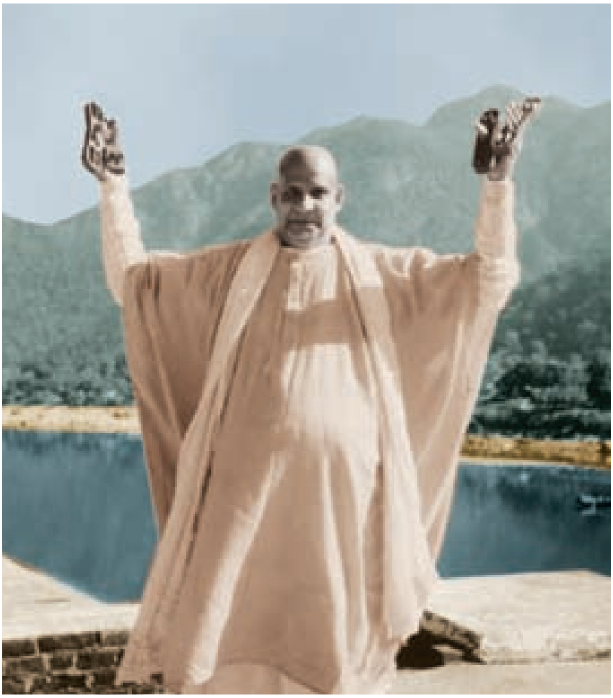

ॐ

6 जनवरी, 1946

वेदान्तिक ध्यान के लिए मेरा मनपसंद सूत्र है–'अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, सोऽहम् सच्चिदानन्द स्वरूपोऽहम्।'

'चिदानन्द का गीत' मेरा प्रिय गीत है जिसे मैं सदा गाते रहता हूँ।

हरे राम हरे राम
राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण
कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यह महामंत्र मेरा प्रियतम कीर्तन है।

गुरु के संग अनमोल क्षण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मुझे याद है जब सन् 1943 में मैं स्वामी शिवानन्दजी से पहली बार मिला। उनसे कहा कि श्री विष्णुदेवानन्दजी से आपका नाम सुनकर आया हूँ, फिर उन्हें सविस्तार अपनी कहानी सुनाई और संन्यास की इच्छा प्रकट की। उन्होंने मेरी बात सुनी और मुझे निष्काम सेवा का आदेश दिया। और मैं उनके आश्रम में रह गया। आश्रम की दिनचर्या थी– अथक परिश्रम और अविराम साधना। कर्म का महत्त्व ध्यान और कीर्तन से कम नहीं था वहाँ। श्रम भी एक साधना होती है। उससे संस्कारों का क्षय होता है और मन को एकाग्रता मिलने लग जाती है।

सुबह-शाम रोज गंगा से 70-75 बाल्टी पानी भर कर लाना पड़ता था। मंदिर के लिए बेलपत्र से लेकर गारा-चूना और ईंट तक ढो-ढोकर लाना होता था। काली कम्बलीवाले के यहाँ से अपने और स्वामीजी के लिए राशन लाना भी दिनचर्या का एक अनिवार्य अंग था। टाइप करना, लेख लिखना, बंदरों और चोरों से आश्रम की रक्षा करना, फावड़े चलाना, बर्तन माँजना, झाड़ू देना, खाना बनाना और खिलाना– क्या कुछ नहीं करना होता था! हर 8 सितम्बर को गुरुजी के जन्मदिन के अवसर पर भण्डारा हुआ करता था। उसके लिए एक हजार आदमियों का भोजन बनाने के लिए बड़े-बड़े आदमकद बर्तन थे। उनमें घुस कर बर्तन साफ करने पड़ते थे।

आश्रम में रात को रोज दो घण्टे अखण्ड कीर्तन का कार्यक्रम रहता था। कीर्तन की महिमा समझाते हुए गुरुजी अक्सर चैतन्य महाप्रभु के बारे में कहते और कहते-कहते विभोर हो जाते। ललिता सहस्रनाम की साधना रात-रात भर चला करती। शाम के सात बजे से सुबह सात बजे तक सवा लाख जप पूरा करना पड़ता था। स्वयं स्वामीजी रातभर बैठ कर जप करते और करवाते थे। गीता और महाभारत का पाठ कभी-कभी सुबह से शाम तक चलता। इसी क्रम में तमाम उपनिषदों की 108 आवृत्तियाँ हमलोगों ने पूरी कर लीं।

दरअसल आश्रम में हमारी हैसियत ‘आध्यात्मिक स्वयंसेवक’ की थी। बीमार स्त्रियों के कपड़े फींचने और रोगियों के पैर दबाने तक का आदेश होता था। निन्दा करने वालों को नमस्कार करना होता था। मैं समझता हूँ, अहं की ग्रंथि से आत्मा को मुक्त करने का इससे अच्छा दूसरा कोई उपाय शायद नहीं है।

कुष्ठ रोगी की सेवा

इस प्रसंग की एक घटना बतलाता हूँ। घटना का सूत्रपात हरिद्वार से होता है। अर्द्धकुंभ का मेला लगा हुआ था। हमारे आदरणीय गुरुभाई, स्वामी चिदानन्द जी उस मेले में गए हुए थे। एक दिन रास्ते में देखा कि बेल के पेड़ के नीचे एक आदमी पड़ा कराह रहा है। कुष्ठ रोग से उसका शरीर गल रहा है और अंग-प्रत्यंग पर मक्खियाँ भिनक रही हैं।

यह दृश्य देखकर चिदानन्द जी का हृदय भर आया। वे तुरंत आश्रम दौड़े चले आए। आकर मुझ से कहा, ‘सत्यम्! एक मरीज देख आया हूँ। उसे जल्दी से आश्रम ले आना है। एक बोरा ले लो और झटपट चलो हमारे साथ।’

उनकी व्यग्रता ने कुछ पूछने-समझने का अवसर ही न दिया। और हम लोग अपनी सेवा-साधना के उस इष्ट-देवता को बोरे में लपेट कर आश्रम ले आए। पता चला, पहले वह एकदम भला-चंगा था। कुंभ-स्नान करते ही हठात् कुष्ठ ने धर दबाया।

हम दोनों की बुद्धि, कुंभ-स्नान और कुष्ठ के बीच सम्बन्ध नहीं जोड़ पा रही थी। पर हमारी बुद्धि के सामने उससे बड़ी समस्या यह थी कि चिकित्सा की व्यवस्था कैसे हो! दोनों गुरुभाइयों ने मिलकर हिसाब लगाना शुरू किया तो अनुमानित व्यय लगभग चार हजार की राशि तक जा पहुँचा। अब भला इतनी बड़ी राशि आए तो कहाँ से!

तभी खड़ाऊँ की खट्-खट् सुनाई पड़ी और स्वामी शिवानन्दजी सामने आ खड़े हुए। हमें देखकर हँसते हुए बोले, ‘ठीक है, ठीक है, सेवा करो! सेवा करो!’ और आगे बढ़ गए।

अब तक हम लोगों ने जो कुछ भी किया था, उनसे छिपा कर किया था। पर उनसे छिपा कर कुछ भी कर लेना संभव नहीं था। हारकर हम लोग अपनी समस्या लिए उनके पास जा पहुँचे और बात की बात में उन्होंने चार हजार रुपए सामने रख दिए, जैसे पहले से तैयार बैठे हों।

और अब शुरू हो गई सेवा की साधना। मैंने और चिदानन्द जी ने आपस में काम बाँट लिए। पर हमारा ‘देवता’ तो गाली से नीचे बात ही नहीं करता था। किसी काम में जरा देर हुई नहीं कि फूल झड़ने लगते थे, ‘मैं आराम से बेल पेड़ के नीचे पड़ा था। ये साले मुझे आश्रम उठा ले आए! क्या जरूरत थी यहाँ ले आने की?’

चिदानन्द जी एक दिन देवता की देह पोंछ कर दवा लगा रहे थे। इसी क्रम में किसी जगह जरा दबाव पड़ गया और भले आदमी ने एक भद्दी-सी गाली के साथ

उनके मुँह पर चट् थूक दिया। क्षमा माँगते हुए चिदानन्द जी बोल पड़े, 'क्षमा कीजिए भगवन्! भूल हो गई! अब फिर ऐसा नहीं होगा।'

और देवता उबल पड़ा, 'साला, तमीज नहीं तो मुझे हाथ क्यों लगाता है? ...'

एक दिन मैं उसकी दाढ़ी बना रहा था। अनभ्यस्त हाथ जरा हिल गया और हल्का-सा खून निकल आया। उसने तुरंत मेरे गाल पर चाँटा रसीद कर दिया और गालियों की झड़ी लगा दी। मैं झल्ला उठा। चिदानन्द जी के पास जाकर बोला, 'आप सँभालिए अपने देवता को! मैं बाज आया ऐसी सेवा से!'

खैर सेवा होती रही। वर्षों की नियमित और विधिवत् चिकित्सा के बाद भी जिस आदमी का चंगा हो सकना कठिन था, वह दो महीने में स्वस्थ होकर एक दिन अचानक जाने कहाँ गायब हो गया।

तब से फिर कभी किसी ने उसे नहीं देखा। पर जाते-जाते वह बोल गया था, 'इस आश्रम में सब साले चोर हैं! बस एक शिवानन्द सच्चा साधु है और दूसरा चिदानन्द... थोड़ा-थोड़ा सत्यानन्द भी है। ... मैंने सब सालों को देख लिया।'

आश्चर्य कि वह एक भी चीज अपने साथ नहीं ले गया। और गया तो ऐसा गया कि फिर कभी उसकी आहट तक न मिली। पता नहीं कौन था वह! कभी-कभी तो मुझे लगता है कि शायद स्वामी शिवानन्दजी ही संपूर्ण नाटक के सूत्रधार थे। उनका अचानक आकर 'सेवा करो, सेवा करो!' कहना और एक अज्ञात व्यक्ति के लिए चार हजार की रकम निकाल कर दे डालना, अनुमान को दृढ़ कर देता है। खैर, उस समय तक स्वामीजी उन ऊँचाइयों तक पहुँच चुके थे, जहाँ देश-काल की दाल नहीं गलती। किसी अज्ञात व्यक्ति की गोपन से गोपन कथा भी उनके लिए खुली हुई पुस्तक थी। रही रुपये दे डालने की बात, तो संभव है कि उनमें सत्पात्र की सेवा के सुख के साथ, अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का भाव भी सम्मिलित रहा हो।

अहं की शल्यक्रिया

एक बार की बात है, एक बूढ़ा मुसाफिर कहीं से घूमता-भटकता आश्रम आ पहुँचा। भोजन करके अपनी थाली माँजने को हुआ तो मैं बोल उठा, 'रहने दो बाबा, रामधनी साफ कर लेगा।' भोजनालय की व्यवस्था मेरे जिम्मे थी और रामधनी भोजनालय में ही सेवक के रूप में नियुक्त था। सामान्यत: रामधनी को मेरे आदेश का पालन करना था। पर उस मुसाफिर की जूठी थाली साफ करने का प्रस्ताव सुनते ही वह अचानक बरस पड़ा, 'मैं जिस-तिस की जूठी थाली नहीं मलूँगा। मेरा हिसाब चुकता कर दीजिए। मैं घर चला जाऊँगा।'

उसके बर्ताव से मेरे अहं को ठेस पहुँची। मैंने उसका हिसाब साफ कर दिया और आश्रम का दरवाजा दिखाकर कहा, 'अभी निकल जाओ यहाँ से।'

जाने के पहले रामधनी शायद स्वामीजी से विदा लेने गया होगा। उन्होंने सारा प्रसंग सुना और कहा, 'ठीक है, सत्यम् ने तुम्हें निकाल दिया, पर मैंने तो नहीं निकाला। आश्रम से तुम्हें जाने की जरूरत नहीं, वह चाहे तो जा सकता है। तुम अभी से मेरे निजी सेवक हो, तुम्हें मेरे साथ रहना है।'

मैंने जब यह सुना तो सिर पीट लिया। कैसा भयंकर अपमान था यह!

दूसरे दिन प्रात:काल स्वामीजी के रातभर लिखे गए तमाम पृष्ठों को उनके कमरे से बटोर कर नियमित रूप से टाइप करने बैठा। कुछेक पृष्ठों के बाद अचानक हाथ रुक गए। स्वामीजी ने एक पूरी कविता लिख डाली थी, 'ओ संन्यासी! अहंकार का त्याग कर! ...त्याग कर! ...'

और कृतज्ञता से मेरी आँखें भर आईं। मैं उनके आगे करबद्ध जा खड़ा हुआ। बोला, 'मुझसे भूल हो गई। मुझे क्षमा कर दीजिए। रामधनी जहाँ भी चाहे, मेरे साथ रहे। मैं उसके साथ रह कर काम कर सकता हूँ!'

दरअसल स्वामीजी अहंकार को संन्यासी का सबसे प्रबल शत्रु मानते थे और अपने शिष्यों को बचा ले चलने के क्रम में जरूरत पड़ने पर एक शल्य-चिकित्सक की तरह कठोरता की सीमा छू लेते थे। अब सोचता हूँ, कितनी करुणापूर्ण थी वह कठोरता!

आज्ञा-उल्लंघन का परिणाम

एक वर्ष हरिद्वार में अर्द्धकुंभ का मेला लगा हुआ था। लोग आ-जा रहे थे। सोचा, जरा मैं भी हो आऊँ। पर गुरुजी ने आदेश दिया, 'सत्यम्! कल पूजा है और प्रसाद तैयार करने का दायित्व तुम्हारा है। तुम मेला देखने नहीं जा सकोगे।'

पर मेरे भीतर जैसे कोई शिशु मचल उठा, 'जाऊँगा तो जरूर। अपना दायित्व पूरा करके जाऊँगा, और क्या?' आधी रात ही काम में जुट पड़ा। सुबह तक सारा प्रसाद तैयार और आत्माराम कुंभ के मेले में!... हठात् वहाँ भीड़ का एक रेला आया और मेरा उत्तरीय जाने कहाँ सरक गया। जिस किसी तरह घाट तक पहुँचा। पानी में उतरा, पर वहाँ भी लोग धँसे पड़ रहे थे। धोती का एक छोर किसी के पैर के नीचे आ गया। जब तक सँभलूँ स्नानार्थियों का एक जोर का रेला आया और धोती भी साफ। ... द्रौपदी का चीरहरण याद हो आया।

अब हाल यह है कि पानी में नंगा खड़ा हूँ और अपने हाल पर रोना आ रहा है। गुरुजी की वर्जना याद आ रही है। पर कोई सूरत नजर नहीं आती। इधर-उधर देखकर एक छलाँग लगाई और दौड़कर पैरों और घुटनों से अपनी लाज ढँकने की कातर चेष्टा करता हुआ एक पेड़ के नीचे जा बैठा। शायद उस पेड़ के नीचे किसी यात्री ने रात में लिट्टी लगाई थी। उसकी बची हुई राख काम आ गई। सारे शरीर में झटपट राख मलकर मैंने आँखें मूँद लीं। यह ध्यान नहीं, ध्यान का अभिनय था।

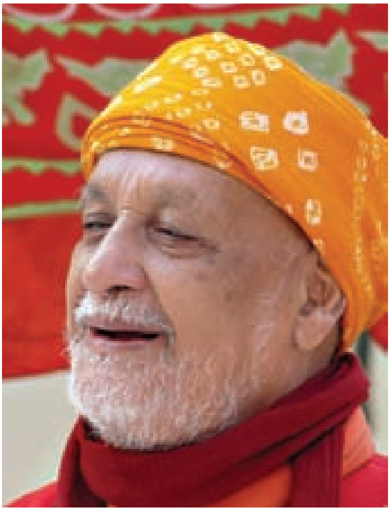

तीर्थयात्री सिद्ध नागा बाबा समझ कर मेरे आगे पैसे और पकवान फेंकने लगे। अंबार लग गया। पहर पर पहर बीत गए, पर कोई वस्त्रदाता नहीं आया। बड़ी देर बाद आँखें खोलीं तो एक परिचित व्यक्ति पर दृष्टि जा पड़ी। उसने मुझे पहचाना, पर विस्मित रह गया। मैंने कहा, 'अभी बात करने का समय नहीं। जल्दी से वस्त्र दो और मेरा त्राण करो। सारी बातें बाद में बताऊँगा।'

आश्रम लौटा तो स्वामीजी प्रवेश-द्वार पर खड़े थे। शायद मेरी ही प्रतीक्षा थी उन्हें। छूटते ही बोले, 'कहो सत्यम्! क्या हाल है? वस्त्रं देहि।' वे हँस रहे थे और मैं उनके चरणों में पड़ा कह रहा था, 'आपकी आज्ञा न मानने का फल मुझे मिल गया। अब आज क्षमा कर दीजिए। फिर कभी ऐसी गलती नहीं होगी।'

निष्कर्ष यह कि अपने शिष्य के हर क्षण पर स्वामीजी की जाग्रत दृष्टि का पहरा था। अधिक क्या कहूँ, मेरे सोने और जागने तक की खबर उन्हें रहती थी।

ब्रह्ममुहूर्त में जागरण

शुरू-शुरू में मैं एक नंबर का 'लेट राइज़र' था। यह बात स्वामीजी की नजर में आ गई। फिर क्या था! सुबह खड़ाऊँ खट्-खट् करते हुए वे आते और सबसे पहले मेरा दरवाजा पीट-पीट कर मुझे जगा देते। मैं जग जरूर जाता, पर ज्योंही वे आगे बढ़ते, मैं पूर्ववत् बिस्तर पर समाधिस्थ हो जाता।

आखिर यह बात भी उन्हें मालूम हो गई। और उन्होंने मेरे कमरे में सोने के लिए, बल्कि यूँ कहिए कि मुझ पर चौकीदारी करने के लिए, एक आदमी को नियुक्त कर दिया। मेरी कठिनाई बढ़ गई। पर फैसला कर लेने पर कठिन क्या है? मैं सबेरे उठ जाता और उस आदमी को कोई जरूरी काम बताकर बाहर भेज देता। वह ज्योंही आँखों से ओझल होता, मैं आकर बिस्तर पर पड़ जाता और मन-ही-मन अपनी सफलता पर प्रसन्न होता।

पर स्वामीजी को यह भी पता चल गया। एक दिन वे बोले, 'सत्यानन्दजी महाराज, आजकल आप सवेरे की क्लास में नहीं आ रहे हैं। मुझे लगता है आप धीरे-धीरे 'आलस्यानन्द' बनते जा रहे हैं। भजन हॉल से मेरी कुटीर सबसे दूर होते हुए भी मैं हर रोज़ आता हूँ, पर आप उसकी आधी दूरी भी नहीं चल सकते!'

'खैर, कोई बात नहीं। तुम तो वैसे भी अपने प्रभावी व्याख्यानों और रोचक गीतों एवं नाटकों से पर्याप्त कीर्ति अर्जित कर चुके हो। वह लेख पूरा कर लिया न? उच्चतम कोटि का है! तुम्हारा दिमाग सचमुच बेजोड़ है! देखने में भले ही तुम बच्चे जैसे लगते हो, पर तुमने अपनी बौद्धिक प्रतिभायें बहुत अच्छी विकसित कर ली हैं। अब थोड़ा मोटा होने का भी प्रयास करो न! तब तुम्हारी भंगिमा भी प्रभावशाली दिखेगी। और यह क्या? तुम्हारी तो मूँछ भी नहीं है! कम-से-कम नकली ही लगा लो। तब इस बढ़िया लिबास में और अपने फर्स्ट-क्लास दफ्तर के साथ तुम एकदम महाराजा लगोगे। पर नहीं, मुझे तो लगता है कि अपनी मेज पर बैठे हुए तुम महाराजा कम, एक मारवाड़ी व्यापारी ज्यादा लगोगे! ...'

स्वामीजी का बात रखने का अंदाज गजब का था – गरम और ठण्ढा एक साथ! एक क्षण प्रशंसा और दूसरे क्षण किसी दोष की तरफ हल्का-सा इशारा। आखिर मुझे ही आदत बदलनी पड़ी और अब तो ब्रह्ममुहूर्त्त और जागरण मेरे लिए पर्यायवाची हैं।

स्वामीजी हमलोगों से कहा करते थे कि साधक का जीवन इतना श्रेष्ठ होना चाहिए कि जीवन पर पड़ने वाले बड़े-से-बड़े आघात उसे जरा भी प्रभावित न कर सकें। समझाने के लिये वे एक व्यक्ति और उसके शिशु के प्रसंग का उल्लेख किया करते थे। व्यक्ति खड़ा है और उसका छोटा-सा शिशु आता है, उसकी धोती खींचता है और कहता है – 'पापा!' वह आदमी थोड़ा चकित जरूर हो सकता है, पर इससे अधिक वह प्रभावित नहीं होता। इसी प्रकार हमें जीवन की झंझटें उस छोटे-से शिशु के समान ही लगनी चाहिए। हमें झटके की जानकारी तो होनी चाहिए, परन्तु विचलित नहीं होना है।

एक समय की बात है, मैं शिवानन्द आश्रम से ऋषिकेश जा रहा था। रास्ते में मुझे एक बूढ़ा संन्यासी मिल गया। उसने मुझे गौर से देखा और कहा, 'अरे सुनो! तुम्हें पीलिया हो गया है।' मैं यह भी नहीं जानता था कि पीलिया क्या होता है। जब मैं आश्रम में वापस आया, तो मैंने उस संन्यासी की बात स्वामीजी को बतायी। स्वामीजी तो डाक्टर थे। वे बोले, 'हाँ, तुम्हें पीलिया है।' मैंने उनसे पूछा, 'तब मैं क्या करूँ?' वे बोले 'कुछ नहीं।' और मुझे सचमुच कुछ भी नहीं हुआ!

स्वामीजी सचमुच अपने शिष्यों को संतान की तरह प्यार करते थे। और यही प्रेम वह अचूक रामबाण था, जिससे स्वामीजी अपने शिष्यों को सुधारते और सदा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते थे।

शिवानन्द गीता–सप्तमोऽध्यायः

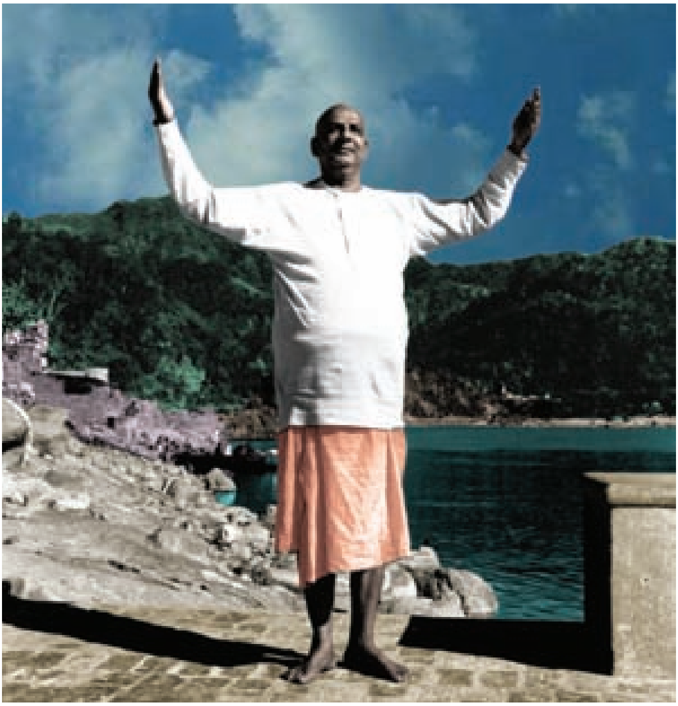

ॐ

7 जनवरी, 1946

इस समय मैं विश्व का सबसे सम्पन्न व्यक्ति हूँ। मेरा हृदय परिपूर्ण है। ईश्वर का सम्पूर्ण ऐश्वर्य अब मेरा है। इसलिए मैं राजाओं का राजा, बादशाहों का बादशाह, सम्राटों का सम्राट् हूँ। मुझे सामान्य राजाओं पर तरस आता है। मेरा साम्राज्य असीम है। मैं अक्षुण्ण सम्पदा का स्वामी हूँ।

मेरा आनन्द अनिर्वचनीय है। मेरा खजाना अथाह है। संन्यास, त्याग, अथक निःस्वार्थ सेवा, जप, कीर्तन और ध्यान ने ही मुझे ऐसा चक्रवर्ती सम्राट् बनाया है।

शिवानन्द गीता – अष्टमोऽध्यायः

ॐ

8 जनवरी, 1946

मेरा कद 6 फुट लम्बा है। मैं सुडौल, सुगठित शरीर का स्वामी हूँ, और अव्वल दर्जे का जिम्नास्ट रह चुका हूँ।

मैं एकादशी के दिन पूर्ण उपवास रखता हूँ। यहाँ तक कि जल की एक बूँद भी ग्रहण नहीं करता। रविवार के दिन मात्र दूध एवं फल का सेवन करता हूँ तथा नमक से परहेज रखता हूँ।

मैं सरल, सहज और प्राकृतिक जीवन जीता हूँ। उमंग और उत्साह मेरी रग-रग में समाया है। मैं उपवास, विश्राम, खुली वायु के सेवन, स्नान, प्राणायाम, व्यायाम एवं धूप-स्नान के माध्यम से शक्ति, सौन्दर्य, साहस, स्थिरता, स्वतंत्रता एवं आरोग्य का सेवन करता हूँ।

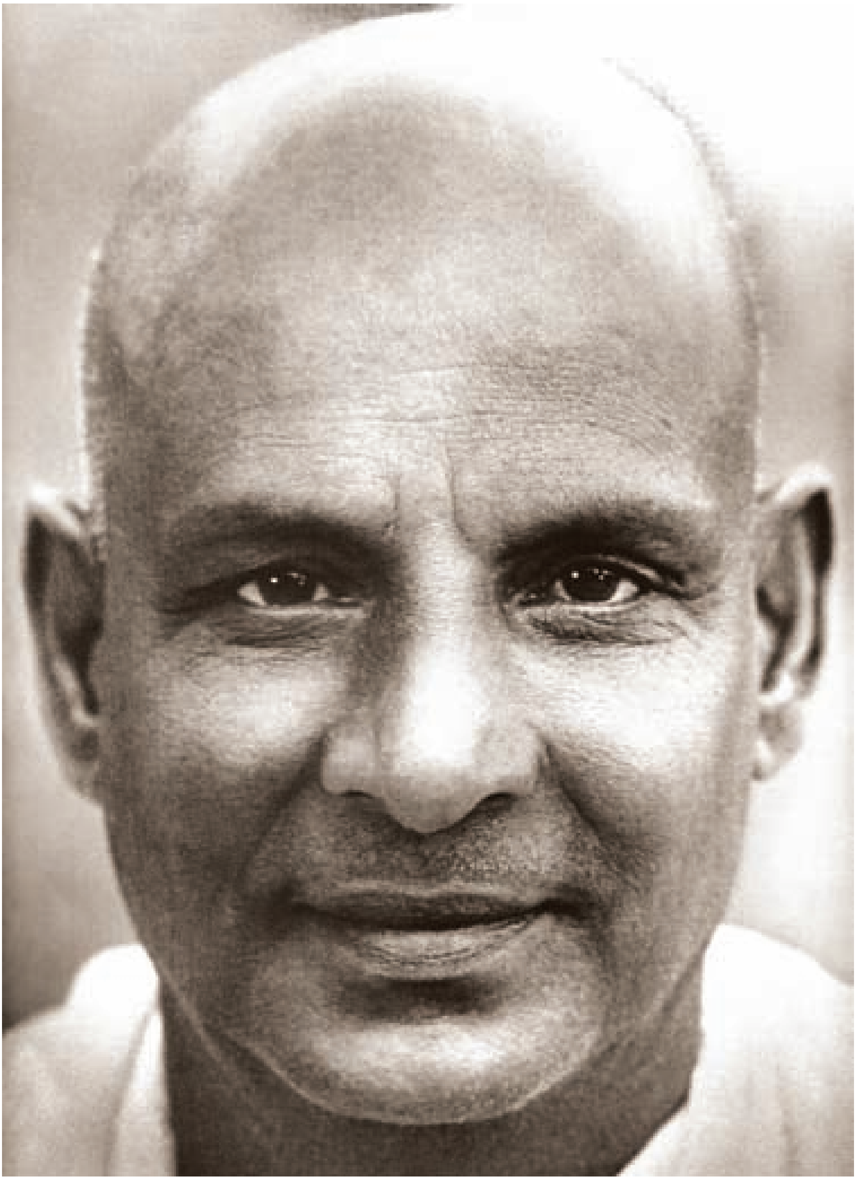

SIVANANDA
JUBILEE

शिवानन्द गीता – नवमोऽध्यायः

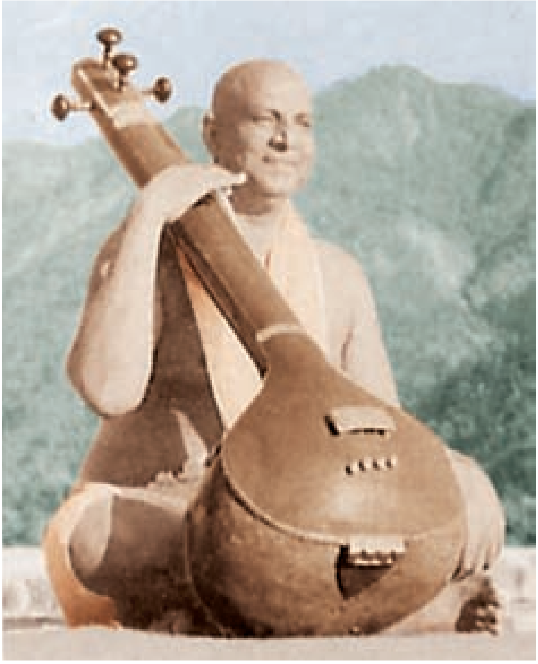

ॐ

9 जनवरी, 1946

संगीत, कला, काव्य, दर्शन, प्रकृति, सौन्दर्य, एकान्त, ध्यान, योग एवं वेदान्त से मुझे बेहद प्रेम है।

मैं सरल एवं विनम्र होने के साथ स्पष्टवादी भी हूँ। मैं सहिष्णुता और सौहार्द्र की भावना से परिपूर्ण हूँ। मुझमें करुणा एवं सहानुभूति कूट-कूट कर भरी है। मैं सहज रूप से उदार और दानशील हूँ।

मैं प्रसन्नचित्त और निर्भय हूँ। मुझमें अपार धैर्य है। मैं अपमान और अपकार सह सकता हूँ। मैं क्षमाशील हूँ। मैं प्रतिशोध की भावना से सर्वथा मुक्त हूँ। बुराई के बदले अच्छाई करना मेरा सहज स्वभाव है। मैं उसकी भी खुशी-खुशी सेवा करता हूँ जिसने मुझे चोट पहुँचाई है।

शिवानन्द योग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

विश्व में योग के दो महान् प्रणेता हुए हैं। एक थे महर्षि पतंजलि, जिनकी अमर कृति 'पातंजल योग सूत्र' आज हमलोगों को योग मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। पातंजल योग दर्शन में अष्टांग योग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की चर्चा है। यम और नियम अपने मनोव्यवहार को सन्तुलित बनाने, अपने मानसिक वातावरण को स्वस्थ बनाने और अपने जीवन के नकारात्मक दृष्टिकोण को बदलने के उपाय हैं। महर्षि पतंजलि अपने तीसरे सूत्र में कहते हैं, *'तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'* – तब द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है। द्रष्टा कौन होता है? जो अपने आपको देख सके और अपने नकारात्मक एवं निराशावादी दृष्टिकोण को बदल सके। नकारात्मक या निराशावादी दृष्टिकोण तमस् और रजस् के प्रभाव के कारण होता है। ऐसा व्यक्ति सात्त्विक गुणों को कभी नहीं अपना पायेगा।

इसलिए योग दर्शन में यह शिक्षा दी गई है कि पहले तुम आत्म-विश्लेषण, आत्म-निरीक्षण और आत्म-सजगता के द्वारा अपने को पहचानने का प्रयास करो। जो दैवी सम्पदा है, उसे उपयोग में लाओ। इसीलिए सबसे पहले महर्षि पतंजलि ने सत्त्व की ओर ले जाने के लिए यम तथा नियम की चर्चा की है। तीसरी और चौथी कक्षा में वे शिक्षा देते हैं आसन और प्राणायाम की। शरीर सन्तुलित हो, शरीर में प्राणों का संचार सुचारु रूप से हो ताकि हमारी अतीन्द्रिय शक्ति जाग्रत हो सके। पाँचवीं और छठी कक्षा में वे शिक्षा देते हैं मनोनिग्रह की, अर्थात् प्रत्याहार और धारणा की। सातवीं और आठवीं कक्षा में वे ध्यान और समाधि के रूप में तन्मयता की शिक्षा देते हैं।

जब मनुष्य तन्मय हो जाता है तब उसे शरीर की सुध नहीं रहती। देश, काल, वस्तु, परिस्थिति, किसी का बोध नहीं होता, क्योंकि तन्मयता की स्थिति में मनुष्य अपने भाव से एकाकार हो जाता है। ध्यान तथा समाधि इसी तन्मय अवस्था के प्रतीक हैं।

सामान्यत: हमलोगों का ध्यान कैसे होता है? बैठे हैं, जप कर रहे हैं, अचानक ख्याल आता है कि रसोईघर में तो सिगड़ी जल रही है, उसके ऊपर दूध रखा हुआ है। बस, ध्यान खत्म, मंत्र गायब, भगवान कृष्ण की छवि गायब। दूध सामने दिखलाई देता है कि वह उफन कर गिर रहा है, जल रहा है। आँखें खुलती हैं, माला छूट जाती है और हम रसोईघर की ओर दौड़ पड़ते हैं। जब ऐसी स्थिति रहती है कि हम लोगों का मन फिर से इधर-उधर खिंचा जाता है, ध्यान में तन्मयता नहीं आती, तब ध्यान का प्रयोजन क्या?

इसलिए अष्टांग योग की चर्चा जो महर्षि पतंजलि ने की, वह अपने को साधने की प्रक्रिया है। वह अपने आपमें एक साधना है, जिससे हम अपनी अन्तरात्मा, इन्द्रियों,

प्राणों, मन, बुद्धि और भावना को नियंत्रण में ले आते हैं। लेकिन जब सब नियंत्रण में आ गये तब क्या होगा? महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग में जिस योग की चर्चा की है, उसको हम कहते हैं – योग साधना। साधना के बल पर हम एक स्थिति को प्राप्त करने में सक्षम हो जाते हैं। अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर एक अवस्था में स्थिर हो जाते हैं।

साधना की उपलब्धियों की अभिव्यक्ति

इसके बाद दूसरे महर्षि, जिन्होंने योग की इस साधना को जीवन में अभिव्यक्त करने की प्रेरणा दी है और एक नये अष्टांग योग की चर्चा की, वे हैं हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी। महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग जहाँ पर समाप्त होता है, वहीं से स्वामी शिवानन्द जी का अभिव्यक्ति योग प्रारम्भ होता है। इसे मैं साधना नहीं, 'अभिव्यक्ति' कह रहा हूँ। पहले आपने योग की अनुभूति और उपलब्धि प्राप्त की, अब उसकी अभिव्यक्ति करनी है। पहले आपने योग को सिद्ध किया, अब योग को जीना है। यही शिवानन्द अष्टांग योग की विचारधारा है।

स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग शुरू होता है समाधि के बाद। साधना के द्वारा अगर तुम समाधि की अवस्था को भी प्राप्त कर लेते हो और समाधि को प्राप्त करने के बाद ईश्वर का साक्षात्कार होता है तो ईश्वर तुमसे केवल एक प्रश्न पूछेंगे, 'तुमने अपनी साधना के बल पर मुझे पा तो लिया, पर केवल एक बात बतला दो, कितने दुखियों की आँखों के आँसू तुमने पोंछे?' अगर हम जवाब देंगे कि भगवान, मैंने तो केवल आत्मोन्नति के लिए प्रयत्न किया है, तो भगवान कहेंगे, 'ठीक है बेटा, दर्शन तो हो गया। अब तू जा।' लेकिन अगर हम सिर ऊँचा करके यह कह सकें, 'भगवान! मैंने एक आदमी के आँसू पोंछे और उसके जीवन में खुशी लाई' तो भगवान कहेंगे, 'बेटा, तू आ, मेरी गोदी में बैठ जा।' यही जीवन का आदर्श होना चाहिए और इसी आदर्श को हमारे परमगुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी ने समझाया है।

शिवानन्द योग के अष्ट सोपान

शिवानन्द योग का पहला अंग है – सेवा। अब देखिए, इसी में विचित्रता दिखलाई देती है। जब हम समाधि को प्राप्त कर चुके हैं, तब फिर हमें क्या करना है? सेवा। जो दिव्य ज्योति अब हम हर प्राणी में देखते हैं, उस दिव्य ज्योति की ओर स्वयं आकृष्ट हो जाना। एक बार एकनाथ जी ने गंगोत्री से जल लेकर रामेश्वरम् की यात्रा की थी। रामेश्वरम् के मन्दिर में वे गंगोत्री के जल से शिवलिंग का अभिषेक करना चाहते थे। लेकिन मन्दिर में प्रवेश करने के पहले उन्होंने देखा कि एक गधा प्यास से तड़प रहा है। वे कहते हैं, 'भगवान! तू क्या परीक्षा ले रहा है मेरी। तेरे द्वार के सामने तू ही प्यास से तड़प रहा है।' और अभिषेक के लिए वे गंगोत्री का जो पावन जल लाये थे, उस गधे को यह कह कर पिला दिया कि भगवान, तू प्यासा मत रह। आपने भी

आज तक अनेक प्राणियों को तड़पते देखा है, लेकिन सबकी अवहेलना की है। फिर आप साधक, योगी या सात्त्विक पुरुष कैसे हो सकते हैं? इसीलिए स्वामी शिवानन्द जी ने कहा कि उनके अष्टांग योग का पहला अंग है सेवा।

दूसरा अंग है प्रेम। सेवा के माध्यम से प्रेम का विस्तार होता है, और जब प्रेम का विस्तार होता है तब आसक्ति खत्म होती है। हम लोग जब प्रेम करते हैं तो उससे आसक्ति बढ़ती है। अगर हम किसी व्यक्ति से प्रेम करते हैं, तो उससे आसक्त हो जाते हैं। लेकिन सात्त्विक प्रेम में आसक्ति बढ़ती नहीं, बल्कि उसका नाश होता है।

किसी ने हमारे गुरुजी से जब पूछा था कि आसक्ति का नाश कैसे किया जाए, तो उन्होंने एक उदाहरण दिया था। मान लो एक कटोरी पानी है, जिसमें तुम स्याही की एक बूँद गिरा देते हो और कटोरी के पानी का रंग स्याही के रंग का हो जाता है। अब उस रंग को उस जल से कैसे निकाला जाए? एक तरीका है। कटोरी के जल को घड़े के जल में डाल दीजिए और फिर निकाल लीजिए। जल साफ रहेगा, क्योंकि कटोरी में जो रंग था, वह अब उस पूरे घड़े में समा गया है। यही सूत्र है। अगर अपनी आसक्ति को कम करना चाहते हो तो उसकी सीमा को बढ़ाते जाओ।

पहले प्रेम आसक्ति का कारण बनता है और वही प्रेम बाद में मुक्ति का कारण भी बनता है। अपने प्रेम का विस्तार करो; उनके प्रति जो तुम्हारे कुछ नहीं लगते। श्री स्वामीजी कहते हैं कि अगर बाजार जाकर अपने बच्चों के लिए जूते या कपड़े खरीदते हो, तो एक काम करो, एक जोड़ा और खरीद लो। यह मान कर चलो कि दो नहीं, तीन सन्तानें हैं। और वह तीसरा जोड़ा ऐसे व्यक्ति को दे दो जिसे उसकी आवश्यकता है। इतना तो हर कोई कर सकता है। अगर सक्षम हो तो एक के बदले दो का कल्याण करो, दो के बदले तीन का कल्याण करो, तीन के बदले चार का कल्याण करो। उसमें तुम जो आत्म-सन्तोष, तृप्ति और आन्तरिक प्रेम का अनुभव करोगे, वह तुम्हारे जीवन में उत्थान का, कल्याण का, मोक्ष का कारण बनेगा।

मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है संग्रह की। संग्रह अपने से जुड़ी वृत्ति है, 'मैं चाहता हूँ, मैं कामना करता हूँ।' संग्रह से मनुष्य तामसिक होता है। अगर निन्यानवे है, तो सौ की चिन्ता हो जाती है। मनीषियों ने कहा है कि जीवन में जो भी कामना होती है,

वह सगर्भा होती है। उस कामना के भीतर एक दूसरी कामना पहले से ही पनप रही होती है। उसके भीतर तीसरी कामना का बीज पहले से ही पड़ा होता है। संग्रह की जो वृत्ति है, वह इस कामना को और बढ़ाती है।

अब इस संग्रह वृत्ति को कैसे कम किया जाए? दान के द्वारा। यही शिवानन्द योग का तीसरा आयाम है। चौथा आयाम है आत्मशुद्धि। जब प्रेम का भाव जागृत होता है और संग्रह की वृत्ति कम हो जाती है, तब फिर वास्तविक आत्मशुद्धि का हम अनुभव कर पाते हैं और उस आत्मशुद्धि में शान्ति का, पवित्रता का अनुभव होता है।

अच्छे बनो, यह पाँचवाँ आयाम है। एक बार जब शुद्धि की स्थिति आती है, तब पाँचवाँ आयाम अपने आप सिद्ध हो जाता है। मनुष्य स्वयमेव अच्छा बन जाता है। अच्छा बनने का मतलब जीवन में सत्त्व की जागृति हो जाती है, तमस् और रजस् का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इस सत्त्व की अभिव्यक्ति हमेशा होती रहती है।

प्रकृति में मनुष्य को छोड़कर कोई ऐसी वस्तु नहीं जो सिर्फ अपने लिए जीती है। नदी कभी अपना जल नहीं पीती, गाय कभी अपना दूध नहीं पीती, वृक्ष कभी अपना फल नहीं खाता। मनुष्य ही सृष्टि का एकमात्र प्राणी है जो दूसरों के लिए नहीं, अपने लिए ही जीता है। क्या ऐसा प्राणी महान् हो सकता है?

समाज के जितने भी प्रेरक आदर्श पुरुष हुए हैं, क्या वे अपने लिए जीते थे? स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि जो दूसरों के लिए जीता है वही वास्तव में जीता है और जो खुद के लिए जीता है वह मरा हुआ जीवन व्यतीत करता है। जो दूसरों के लिए जीता है, उसके जीवन में सत्य की अभिव्यक्ति सहज रूप से होती है। वह हर समय अच्छा काम ही करता है। यही शिवानन्द योग का छठा अंग है।

सातवें आयाम में स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि जब व्यवहार में सत्त्व जाग्रत हो जाता है, केवल एक आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि आचरण में दिखायी देने लगता है, तब जाकर अन्तिम तन्मयता की स्थिति आती है। और वह तन्मयता है ध्यान। ध्यान पातंजल योग का भी सातवाँ आयाम था, पर शिवानन्द योग का ध्यान एक जीवन्त और जाग्रत अनुभूति है। इस ध्यान की अवस्था में मनुष्य को आँख मूंदकर बैठने की, साधना करने की आवश्यकता नहीं। वह तो खुली आँखों से, जागते हुए, चलते-फिरते हुए भी उस तन्मय अवस्था में रहता है। उस ध्यान से फिर अन्त में उस अवस्था की प्राप्ति होती है जिसे महर्षि पतंजलि ने समाधि कहा और स्वामी शिवानन्द जी ने सहज समाधि या आत्मसाक्षात्कार।

यह शिवानन्द अष्टांग योग है, जो पातंजल योग के बाद प्रारम्भ होता है। इसमें हमें योग की पूर्णता दिखलाई देती है। यह योग का ऐसा क्रम है, जिसका अनुभव हो जाए तो मनुष्य दिव्य, ईश्वरीय रूप में परिणत हो जाता है।

योग सम्मेलन, नासिक, 29 फरवरी 2004

शिवानन्द गीता – दशमोऽध्याय:

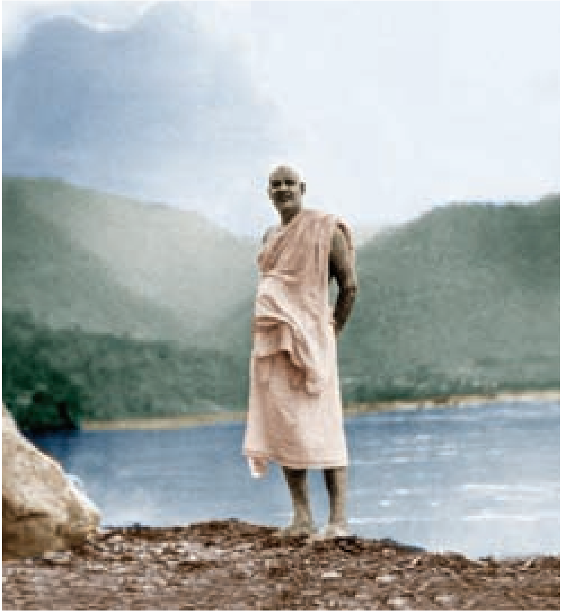

ॐ

10 जनवरी, 1946

गंगा और हिमालय मुझे बहुत प्रिय हैं। वे मेरे दिव्य माता-पिता हैं। उनसे मुझे प्रेरणा और दिशा मिलती है। मैं गंगा में नहाता हूँ, तैरता हूँ, उन्हें अपना सब कुछ मानता हूँ। गंगा की मछलियों को प्रेमपूर्वक चारा खिलाता हूँ।

मैं नियमित रूप से माँ गंगा की आराधना करता हूँ, उनकी आरती उतारता हूँ, उन्हें प्रणाम कर उनसे प्रार्थना करता हूँ। मैं निरंतर उनका गुणगान करता हूँ और उनकी भव्य महिमा के बारे में कुछ-न-कुछ लिखा करता हूँ।

माँ गंगा ने मुझे पोषित किया है, मुझे सांत्वना और सुख प्रदान किया है। उन्होंने ही मेरे अंतरतम में उपनिषदों के सत्य उद्घाटित किए हैं। माँ गंगा की जय हो! हर हर गंगे!

शिवानन्द गीता–एकादशोऽध्यायः

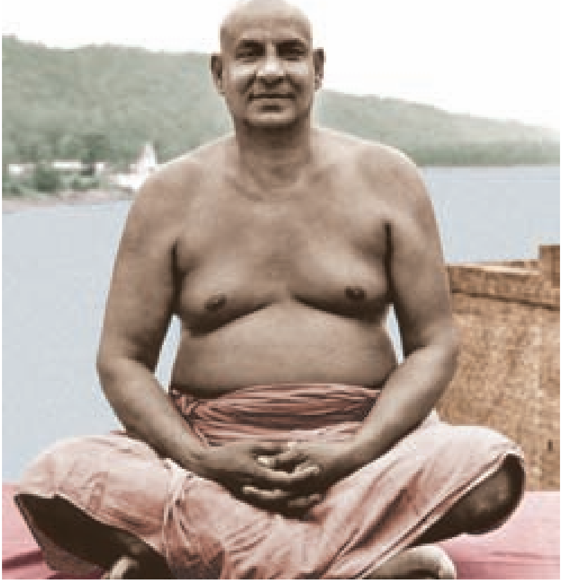

ॐ

11 जनवरी, 1946

मेरी दिनचर्या भगवान बुद्ध के सदृश है। मैं सदैव अपने कमरे में रहता हूँ और वहाँ जप, कीर्तन एवं ध्यान करता हूँ। मैं आध्यात्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय करता हूँ, और अपने अनुभवों को लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त करता हूँ। दैनिक काम-काज, सेवा एवं लोगों से मिलने हेतु थोड़ी देर के लिये अपने कमरे से बाहर आता हूँ।

मैं अल्पभाषी हूँ। बातचीत की बजाय मैं गहन चिन्तन, ध्यान, कर्म और सेवा को अधिक महत्त्व देता हूँ।

मैं एक मिनट भी व्यर्थ नहीं गँवाता। स्वयं को सदा व्यस्त रखता हूँ। मैं सुनियोजित जीवनयापन करता हूँ। परहित में संलग्न रहकर हर क्षण आत्म तत्त्व की आराधना करता हूँ, क्योंकि यह सम्पूर्ण विश्व मेरी ही आत्मा का विस्तार है।

शिवानन्द गीता – द्वादशोऽध्यायः

ॐ

12 जनवरी, 1946

गीता, उपनिषद्, भागवत, योगवाशिष्ठ, अवधूत गीता और विवेक चूड़ामणि जैसे सद्ग्रंथ मेरे अन्तरंग सहचर हैं।

मैं कर्म, भक्ति, ज्ञान एवं योग का विलक्षण मिश्रण हूँ। मैं विशुद्ध रूप से श्री शंकराचार्य का अनुयायी हूँ। मैं केवल-अद्वैत वेदान्ती हूँ। मैं शुष्क वाक्-विलासी वेदान्ती कतई नहीं, व्यावहारिक वेदान्ती हूँ, जिसने वेदान्त के सत्यों को अपने जीवन में आत्मसात् किया है।

मैं समग्र योग का अभ्यास और प्रतिपादन करता हूँ। मैं सभी योगमार्गों का एक साथ समर्थन करता हूँ। मैं मन-वचन-कर्म से अहिंसा, सत्य एवं ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ।

श्री शंकर की जय हो!

शिवानन्द आश्रम की स्मृतियाँ

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आप किस स्कूल में गए, जिसने आप जैसा नागरिक बनाया?

मैं आज जो कुछ हूँ, अपने गुरु आश्रम में बना। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्दजी कभी कुटिया से बाहर आते नहीं थे। सब काम हमलोगों को ही करना पड़ता था। पैसा कमाना, खर्च करना और संभाल कर भी रखना। मकानों के नक्शे बनाना, फिर रसोईघर और मकान बनाना, यह सब अपने से करना पड़ता था। स्वामीजी केवल कह देते थे, 'बहुत अच्छा है।' अपने ऊपर सब काम पड़ गया, इसलिए सब सीखकर करना पड़ा। इसका स्कूल की शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं।

शिवानन्द आश्रम का विकास मुख्यतः आपने ही किया है न?

स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम के निर्माण और विकास में बहुत शिष्यों का हाथ था, किसी एक का नाम लेना उचित नहीं होगा। उस वक्त वहाँ हम बीस-बाईस साल के संन्यासी थे। हमलोगों को सोचना पड़ा, करना पड़ा। जिसकी जो प्रतिभा थी, क्षमता थी, उसने वह दिखानी शुरू की।

स्वामीजी ने केवल तीन काम किए। एक तो उन्होंने संस्था बना दी और उसको पंजीकृत करवा दिया। एक बार संस्था पंजीकृत हो गई तो उसे ठीक ढंग से चलाना भी पड़ेगा। लेखा-जोखा रखना पड़ेगा, ऑडिट करवाना पड़ेगा, सारी औपचारिकताएँ पूरी करनी पड़ेंगी। दूसरा, उन्होंने दिव्य जीवन पत्रिका चालू कर दी। अब उसके लिए लेख तैयार करने ही पड़ेंगे, उसकी प्रूफरीडिंग के लिए पढ़े-

लिखे लड़के होने चाहिए, फिर उसको छापना पड़ेगा, डाक से भेजना पड़ेगा। ये दो अनिवार्यताएँ उन्होंने तैयार कीं। तीसरा, उन्होंने अखण्ड महामंत्र कीर्तन का संकल्प ले लिया। अखण्ड कीर्तन संकल्प का मतलब होता है बहुत-से लोगों को इकट्ठा करना। चौबीसों घण्टे कीर्तन करना है तो चार-पाँच आदमियों से होने वाला नहीं। उसके लिए तीस-चालीस आदमियों की जरूरत पड़ती है। इसलिए जो भी आए, उसे ले लो, उसके रहने, खाने-पीने और बीमारी के इलाज का इन्तजाम करो।

स्वामीजी ने इन तीन चीजों के आधार पर लोगों को इकट्ठा किया और सब काम हमलोगों को करना पड़ा। अब कोई आएगा तो कहाँ ठहरेगा? ठीक है, मकान बना लो। खाना कहाँ खाएगा? खाने के लिए रसोईघर बना। रसोईघर में बन्दर आकर लूटता है, तो उसमें छत लगा दो। यह सब हमलोगों को सोचना पड़ा। हम लोग अपने घर में रहते हुए यह सब थोड़े ही जानते थे। हम लोग मकान में रहते थे, मगर यह मालूम नहीं था कि मकान कैसे बनता है। जब बनाना पड़ा तब पता चला कि मकान में नींव होती है, खम्भे, दीवार, खिड़की और छत होती है। खाना बनाना हमें क्या मालूम? घर में नौकर खाना बना देते थे, हम खा लेते थे। आश्रम आकर पता चला खाने का मतलब आग जलाओ, रसोईघर साफ करो, पानी लाओ, सब्जी काटो, बाजार से अनाज लाओ, उसको कीड़े, बन्दर आदि से बचाओ। कढ़ाई गरम होती है, उसको कैसे पकड़ना चाहिए। छत चूने लगती है, उसको ठीक करना है। बरसात के दिनों में पानी गंदा हो जाता है, उसको कैसे छाना जाता है, यह सब सोचना पड़ा, क्योंकि सब सिर पर आ गया।

पत्रिका शुरू हुई तो बहुत लोग आने लगे। अब उनके रहने का पक्का इन्तजाम करो ताकि बन्दर उनके कमरे में न जा सके। वहाँ का बन्दर ऐसा होता है कि कमरे के अन्दर जाकर चीज उठा लेता है। इसके अलावा साँप और बिच्छू थे, रोज बिच्छू की कोई-न-कोई घटना होती थी। वहाँ से बैंक बीस मील दूर था। सबेरे जाओ, शाम को लौटो। पत्रिका की छपाई लाहौर में होती थी, एक-दो हजार प्रतियाँ छपती थीं। छपवाने के लिए लाहौर जाओ, छपाई करके आश्रम भेजो, फिर यहाँ पर लिफाफे में डालो, मुहर लगाओ, ताँगे से ऋषिकेश ले जाओ, वहाँ जाकर डाक से भेजो। सबेरे का गया स्वामी शाम को ही वापस आता था।

और पानी की समस्या! जब भी पानी चाहिए तो गंगाजी जाओ। टट्टी लगे तो पहले गंगाजी जाओ, बाल्टी भरो फिर वहाँ पहाड़ में जाकर टट्टी करो, फिर वहाँ से वापस गंगाजी आओ और हाथ धोओ। यह जीवन था।

आश्रम में पैसा आने लगा तो सोचना पड़ा कि पैसे का अब क्या करना है। ज्यादा पैसा हो तो आयकर के अंतर्गत आ जाता है। तब फिर मन्दिर बनाना शुरू किया। मन्दिर बनाया तो उसके लिए पुजारी होना चाहिए और रोज चार बार नियमपूर्वक

पूजा होनी चाहिए। प्रसाद के लिए सबेरे चार बजे खिचड़ी बननी चाहिए। इसके लिए रसोईघर में चार बजे आग होनी चाहिए।

इन सब चीजों से हमारे अंदर बेहद आत्मविश्वास, श्रद्धा और साहस आया। इस सबका शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं। अगर हम स्कूल में नहीं भी पढ़े होते तो भी हम ऐसे ही होते जैसे आज हैं। आश्रम का प्रशिक्षण बहुत मदद करता है। हमें एक-एक चीज को देखना पड़ता था, क्योंकि सब अपने सिर पर था। गुरुजी तो कुटिया से निकलते ही नहीं थे। निकलते भी तो थोड़ा देखकर वापस चले जाते थे। कहते थे, 'क्या हुआ? मकान बन गया, बहुत अच्छा।' बस इतना कहकर चले जाते थे। वे यह थोड़े ही बोलते थे कि वहाँ कील मत ठोको, वहाँ पानी चूएगा, ठीक करो। वह सब हमलोगों को सोचना पड़ता था। जब लड़कों के सिर पर आता है, तब वे बहुत योग्य बनते हैं। स्वतंत्रता और प्रोत्साहन से आत्मविश्वास आता है। हमारे स्वामीजी हमें प्रोत्साहन देते थे। प्रोत्साहन का मतलब तारीफ नहीं, बल्कि यह कि वे हमें काम करने की पूरी छूट देते थे, काम में ज्यादा हस्तक्षेप नहीं करते थे।

यह योजना किस की रहती थी कि यह करना चाहिए या वह करना चाहिए? आपकी या किसी और की?

योजनाएँ परिस्थितियाँ बनाती थीं। अब कीर्तन के लिए चौबीस-पचीस आदमी चाहिए तो उनके लिए मकान बनवाना है। उस समय जो मकान बनता था उसमें सुरखी और चूने का इस्तेमाल होता था। छत भी आर्च में बनती थी। फिर सीमेंट का जमाना आया, तीन रुपया बोरा था सीमेंट। हरिद्वार के बगल में एक जगह थी मोतीचूर, वहाँ से बैलगाड़ी से सीमेंट लाते थे और उसके लिए परमिट नरेन्द्रनगर से लेना पड़ता था, छः मील दूर। पहले जिला मुख्यालय देहरादून था, आजादी के बाद नरेन्द्रनगर बना। सीमेंट, मिट्टी तेल, चीनी वगैरह के लिए वहीं से परमिट लेना पड़ता था। मैं सबेरे जाता था, शाम को परमिट लेकर आता था। तेईस-चौबीस साल का जवान था, कुछ पता नहीं चलता था। अब होता तो छोड़-छाड़ कर भाग जाता। कौन उस झंझट में पड़े! तो हम सब ने मिलजुल कर काम किया। किसी एक का नाम नहीं लिया जा सकता।

स्वामी शिवानन्द जी की दिनचर्या कैसी रहती थी?

वे अधिकतर अपनी कुटिया में रहते थे। सबेरे आठ बजे बाहर आते थे एक-दो घण्टे के लिए, फिर वापस चले जाते थे। शाम को फिर दो घण्टे बाहर आते थे, फिर लौट जाते थे। वे कुटिया में लिखते रहते थे, किसी से मिलते नहीं थे। वहाँ कोई और रहता भी नहीं था।

स्वामीजी तो अच्छे लेखक थे न?

हाँ, बहुत अच्छे लेखक थे। वे अविरल गति से लिखते जाते थे, उनकी लिखाई में काट-छाँट नहीं होती थी। उनकी कलम को रुकने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। उनकी जानकारी भी बहुत थी।

स्वामीजी का स्वभाव नर्म था या कड़ा?

बहुत नर्म स्वभाव के थे। दिल के बिल्कुल साफ। जो आदमी अच्छा होता है, उसे झूठ नहीं बोलना पड़ता। झूठ उसे बोलना पड़ता है जिसमें कुछ गड़बड़ होती है। उनका जीवन बेहद साफ-सुथरा और बेदाग था।

जब आप स्वामीजी के आश्रम में शामिल हुए, तब क्या आश्रम बन चुका था?

हाँ, संस्था पंजीकृत हो चुकी थी। स्वामीजी ने स्वयं उसका पंजीकरण कराया अम्बाला में। स्वामीजी पंजाब बहुत जाते थे। जैसे आजकल साधु-संन्यासी अमेरीका-इंग्लैण्ड बहुत जाते हैं, उन दिनों पंजाब और सिंध जाते थे, क्योंकि वहाँ बहुत चेले और आर्थिक सहयोग मिलता था। संस्था उस वक्त बन चुकी थी, मगर स्वामीजी के रहने के लिए अपना कोई मकान नहीं था। स्वर्गाश्रम का एक मकान था, उसी में एक कमरे में बीस रुपया महीना किराया देकर रहते थे। जिन्दगीभर किराये के मकान में रहे, अपने आश्रम के मकान में नहीं। जिस मकान में स्वामीजी की महासमाधि हुई, वह स्वर्गाश्रम ट्रस्ट का था। अब ट्रस्ट ने आश्रम को दे दिया है। एकदम गंगाजी के पास है। उसमें चार कमरे थे, जो एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। उस वक्त एक कमरे से दूसरे कमरे के बीच आर्च देकर जोड़ देते थे, बीम की पद्धति नहीं थी। गंगाजी में जब बाढ़ आती थी तब उनके कमरे में भी पानी आ जाता था। दो-चार दिन के लिए वे स्थानान्तरित हो जाते थे, फिर वापस चले जाते थे। वे इस असुविधा को नजरन्दाज कर देते थे, क्योंकि वे गंगाजी के बड़े भक्त थे। वे कहा करते थे कि गंगा मेरी माँ है। कई बार लोग उनको बाहर देश-विदेश चलने के लिए कहते थे, लेकिन स्वामीजी कहते थे मैं गंगाजी के किनारे ही अपने प्राण त्यागना चाहता हूँ।

वे गंगाजी का ही पानी पीते थे। गंगाजी का पानी बरसात में मैला हो जाता है, उसमें बहुत बालू आ जाती है। उनके पास एक बहुत बड़ा लोटा था, जैसा पंजाबियों के यहाँ होता है, जिसमें लस्सी बनाते हैं। उस लोटे

में फिटकरी डालते थे, फिटकरी से मैल नीचे बैठ जाती थी, उसी को छानकर पीते थे।

स्वामीजी मसालेदार भोजन करते थे या सादा?

स्वामीजी सबेरे-शाम दो फुलके लेते थे और साबुत मूँग की दाल उनको सबसे पसन्द थी। साबूत मूँग को उबाल दिया, जीरा डाल कर छोंक दिया और नमक डाल दिया। मसाला नहीं। वे चावल नहीं लेते थे। चाय-कॉफी तो कभी नहीं। हम ही लोग उनका खाना बनाते थे। दो-तीन महीने तो मैंने ही बनाया था उनका खाना।

स्वामीजी विनोदी स्वभाव के थे?

हाँ, बहुत ज्यादा। उनकी बहुत-सी किताबों में उनकी विनोदशीलता दिखाई पड़ेगी। उस समय के समाज की कई चीजों पर वे मीठे व्यंग कसते थे। स्वामीजी के वक्त साधुओं की एक नई पीढ़ी पैदा हुई थी, जो स्वामी विवेकानन्दजी से थोड़ी प्रभावित थी। वे लोग स्वामी विवेकानन्द की तरह कपड़े पहनकर, माथे पर पगड़ी बाँधकर, जेब में फाउण्टेन पेन, हाथ में एक घड़ी और डायरी रखकर निकलते थे। ऐसे संन्यासियों पर स्वामीजी मजाक लिखते थे। गृहस्थों पर भी मजाक करते थे। लक्ष्मी जी और विष्णु जी का झगड़ा, शिव-पार्वती का झगड़ा या साधु लोग कैसे रहते हैं, इस प्रकार के बहुत व्यंग लिखते थे वे।

इस पर कोई पुस्तक है?

हाँ, 'विसडम इन ह्यूमर'। बहुत अच्छी किताब है। एक पण्डित जी थे, उनको भोजन का निमंत्रण दिया गया। लोगों ने उन्हें खूब खिलाया। अंत में पण्डित जी बोले, 'अब और नहीं खा सकता।' लोगों ने कहा, 'अच्छा, आप पाचक चूर्ण ले लीजिए।' पण्डित जी बोले, 'पाचक चूर्ण के लिए जगह होती, तो दो लड्डू और न खा लेता!' इस तरह की बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं उसमें।

साधु लोगों के बारे में स्वामीजी कहते थे कि वे दूसरों को तो वैराग्य का ज्ञान देते हैं, लेकिन अपने कमरे में किसमिस-बादाम खाते हैं! बोलते हैं हम पैसा नहीं छूते, मगर चेलों से सब काम करवाते हैं। स्वामीजी

स्वामी दयानन्द सरस्वती को बहुत मानते थे, हालाँकि उनके बारे में खुलकर ज्यादा कहा नहीं। उनका मानना था कि अगर स्वामी दयानन्द जी थोड़ी अंग्रेजी जानते तो दुनिया को सनातन धर्म का सच्चा संदेश दे सकते थे। स्वामी विवेकानन्द जी अंग्रेजी जानते थे और उन्हें बंगाली संरक्षण भी मिल गया, इसलिए वे विश्वविख्यात हो गए। लेकिन दयानन्द जी अंग्रेजी नहीं जानते थे और संस्कृत को चला नहीं सके। जैसे आजकल जो महिला टेनिस खेल सकती हो, हाई-हील पर चल सकती हो, छोटे-छोटे बाल हों और अंग्रेजी बोल सकती हो, उसे ही सुसंस्कृत और कुशल पत्नी समझा जाएगा, भले ही उसे खाना बनाना या बच्चे का ख्याल रखना या सास-ससुर को प्रणाम करना न आता हो।

स्वामी शिवानन्द जी के कई योग्य संन्यासी निकले, उसका कारण क्या है?

आजादी। वे कभी अपने शिष्यों को आदेश देने के आदी नहीं थे। अगर शिष्यों को मकान बनाना है तो बनाएँ, हमें उससे क्या। अगर आश्रम बनाना चाहते हो तो बनाओ, रहो। उन्होंने अपने शिष्यों को स्वेच्छानुसार सोचने, निर्णय लेने और काम करने की पूरी छूट दी थी। यही कारण है।

माता-पिता जब बच्चों को बहुत मार्गदर्शन देते हैं तब बच्चे सीमित हो जाते हैं। एक मर्यादा, एक सीमा में बन्ध जाते हैं। बच्चों का यदि मार्गदर्शन न करो तो फिर वे अपने ढंग से चलते हैं। उनमें कुछ अच्छे ढंग से चलते हैं, कुछ बुरे ढंग से। जो बुरे ढंग से चलते हैं, वे भी कुछ दिनों के बाद अच्छे हो जाते हैं, सुधर जाते हैं। बहुत ज्यादा झंझट नहीं होता। इसलिए बच्चों को आजाद रखना ही बेहतर है।

रिखियापीठ, 10 जुलाई 1999

शिवानन्द गीता – त्रयोदशोऽध्यायः

ॐ

13 जनवरी, 1946

मैं सभी धर्मों के संतों और पैगम्बरों का आदर करता हूँ। मैं सभी धर्मों, सम्प्रदायों, पंथों, मतों एवं सिद्धान्तों का सम्मान करता हूँ।

मैं एकात्म भाव एवं प्रेम से सबकी सेवा करता हूँ तथा सबमें एकमेव-अद्वितीय परमात्मा के दर्शन करता हूँ। इसलिए मैं आसानी से सबके साथ घुलमिल जाता हूँ। अपने वचन के प्रति मैं कटिबद्ध रहता हूँ। गरीबों की सेवा करना मुझे आनन्द और संतोष प्रदान करता है। मैं सभी जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों, यहाँ तक कि ईंट-पत्थरों को भी मानसिक प्रणाम करता हूँ। बुजुर्गों और साधु-संतों का मैं सम्मान करता हूँ। मैं आज्ञाकारी हूँ। सच्ची निःस्वार्थ सेवा से सबको प्रसन्न कर देता हूँ।

अतिथियों का सत्कार बड़ी सावधानी और तन्मयता से करता हूँ। उनकी सेवा-शुश्रूषा में कोई कसर नहीं छोड़ता चाहे कितनी ही दौड़-भाग क्यों न करनी पड़े। मरीजों और साधु-संतों के पैर दबाकर उन्हें आराम पहुँचाता हूँ।

शिवानन्द गीता – चतुर्दशोऽध्यायः

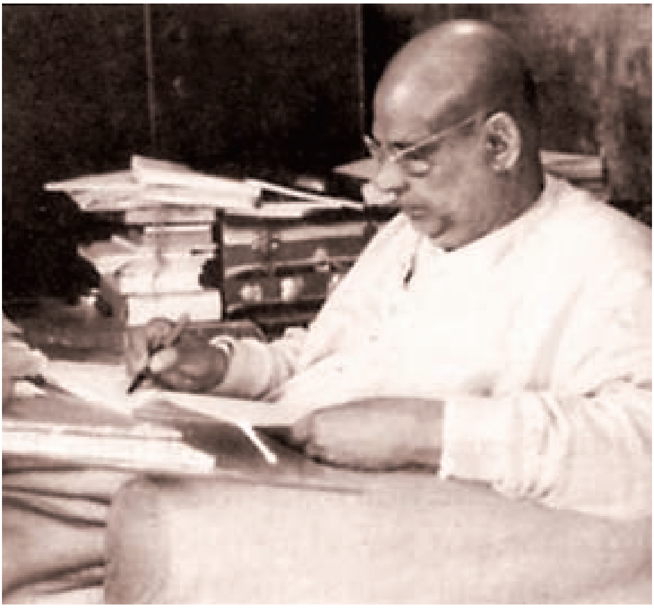

ॐ

14 जनवरी, 1946

सभी पत्रों का त्वरित उत्तर देना मेरी आदत है। एक ही समय मैं अनेक कार्य साथ-साथ कर लेता हूँ। मेरा लेखन कार्य विद्युत गति से चलता है।

अपने पास कुछ भी न रख सारा धन खर्च कर देना और सभी चीजें बाँट देना मेरा जन्मजात स्वभाव है। गरीब-असहायों और अपने शिष्यों को भोजन कराने में मुझे अपार आनन्द मिलता है। मैं उन्हें मातृवत् स्नेह करने का प्रयास करता हूँ।

मैं लोगों को वही चीजें बतलाता और सिखलाता हूँ जिनका मैंने स्वयं अभ्यास एवं अनुभव किया है। मैं सदैव अन्तर्मुखी होकर आत्मावलोकन और आत्मविश्लेषण करता हूँ। आध्यात्मिक डायरी, अनुशासित दिनचर्या और दैनिक संकल्प रूपी त्रिशूल से सदा माया के आक्रमणों से अपनी रक्षा करता हूँ।

शिवानन्द गीता – पंचदशोऽध्यायः

ॐ

15 जनवरी, 1946

मैंने अपने गुरूजनों की सेवा हमेशा पूर्ण निष्ठा, गहरी श्रद्धा एवं भक्ति से की है। गुरूजनों के सान्निध्य में रहते हुए अनेक जीवनोपयोगी पाठ सीखे, अपने भीतर अनेक सद्‌गुणों को सहज रूप से विकसित होते देखा।

अपने सुषुप्त सामर्थ्य का ज्ञान तब हुआ जब परिव्राजक जीवन में कभी बिना भोजन भ्रमण करना पड़ा, तो कभी सूखी रोटी पानी में भिगोकर खानी पड़ी, तो कभी कड़ाके की ठण्ढ में सड़क किनारे निर्वस्त्र ही सोना पड़ा।

अपने आदर्शों और सिद्धान्तों के साथ समझौता मुझे बिल्कुल भी स्वीकार नहीं। मैं वाद-विवाद से दूर रहता हूँ, एकांत और मौन में रहना ज्यादा पसंद करता हूँ।

दिव्य जीवन के सूत्रधार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

स्वामी शिवानन्द जी इस युग में बहुत बड़े आध्यात्मिक प्रणेता के रूप में सामने आए हैं। आप उन्हें संत, साधु, गुरु या महात्मा कह सकते हैं, पर जिस भी विशेषण से आप स्वामी शिवानन्द जी के नाम को अलंकृत करना चाहें, वे सभी शब्द उनके भव्य और विराट् व्यक्तित्व के सामने फीके पड़ जाते हैं।

हम उन्हें एक ऐसे युग-द्रष्टा और मनीषी के रूप में मानते हैं, जिन्होंने न केवल परमतत्त्व का अनुभव किया, बल्कि उस परमतत्त्व की अभिव्यक्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण बन, भारत के आध्यात्मिक गगन में एक दीप्तिमान् नक्षत्र की तरह चमके। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा दी। उनकी यह आध्यात्मिक शिक्षा किसी सैद्धान्तिक दर्शन पर नहीं, बल्कि स्वयं उनके जीवन के अनुभवों पर आधारित रही। ये अनुभव उन्हें ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुए, जिन्होंने उन्हें आध्यात्मिकता के शिखर तक पहुँचा दिया।

दिव्य जीवन का प्रथम सोपान – पवित्रता

स्वामी शिवानन्द जी हमेशा कहा करते थे कि हर व्यक्ति में अपने जीवन को दिव्य बनाने की क्षमता है। हर व्यक्ति को अपना जीवन दिव्य बनाना चाहिए, क्योंकि उसी दिव्यता के माध्यम से मनुष्य का अपनी अन्त:शक्ति के साथ परिचय होता है। दिव्यता की शुरुआत होती है अपने आपको शुद्ध करने की प्रक्रिया से। जब तक शुद्धि नहीं, तब तक उपलब्धि भी नहीं। शुद्धि का मतलब होता है अपने पात्र को खाली करना। अगर एक बोतल में मूत्र भरकर गंगा जी में सौ साल भी डुबाकर रखोगे, तो क्या बोतल का मूत्र शुद्ध और पवित्र हो जाएगा? नहीं, क्योंकि बोतल का मुँह तो बन्द करके रखा है।

कितने ही लोग गंगा जी को दूषित करते हैं, लेकिन उनकी पवित्रता आज तक भंग नहीं हुई है। गंगा जी पवित्रता का सनातन प्रतीक रही हैं। स्वामी शिवानन्द जी को गंगा जी बहुत प्रिय थीं, क्योंकि वे केवल भारत की अस्मिता का नहीं, बल्कि जीवन की शुद्धता और पवित्रता का भी प्रतीक हैं, जिनके स्पर्शमात्र से मनुष्य अपने आपको विकारों और मलों से मुक्त करता आया है। आखिर जब शरीर गंदा होता है तो नहाते हो न, शरीर को साबुन से रगड़ते हो न? लेकिन मन जब गंदा होता है तब उसे रगड़ते हो कभी? या उसी गंदगी में ही फिसलते रहते हो? गुस्सा आया, घृणा हुई, द्वेष हुआ, राग हुआ, फिसल गए। इसलिए सबसे पहले शुद्धि की आवश्यकता है। अन्त:करण को पवित्र बनाकर, मन को सकारात्मक

एवं रचनात्मक बनाकर, ब्रह्माण्ड में चारों ओर जो शक्ति निहित है, उसका अनुभव करना है। वही ब्रह्माण्डीय शक्ति जीवन के रूप में व्यक्त हो रही है। इस जीवन को ठीक से जीओगे तो स्वस्थ रहोगे। ठीक से नहीं जीओगे, तो अस्वस्थ रहोगे। नियम-अनुशासन का पालन करोगे तो आयु बढ़ेगी, अनियमित-अनुशासनहीन जीवनशैली होगी तो आयु घटेगी।

यह केवल शास्त्र नहीं, आधुनिक विज्ञान भी कहता है। परीक्षणों द्वारा हाल में पता चला है कि हाईस्कूल के बच्चों को हृदय रोग होने की संभावना अधिक हो रही है। पहले कहा जाता था कि पैंतालीस के बाद ही हृदय रोग होने की संभावना है, लेकिन अभी कहा जा रहा है कि हाईस्कूल के छात्रों को भी यह संभावना है!

इसका क्या तात्पर्य है? क्या यह एक स्वस्थ जीवन, मानसिकता, विचारधारा, आचरण, अनुशासन और समाज की निशानी है? अगर है तो फिर ऐसा ही जीवन स्वीकार करो, इसके दु:ख-सुख को स्वीकार करो। और अगर ऐसा नहीं है तो जो तुम्हारे लिए हानिकारक है, उसे छोड़ने का प्रयास करो, चाहे वह एक आदत हो, व्यवस्था हो या मन की एक स्थिति या वृत्ति हो। जब तक यह नहीं होगा, अन्त:करण में पवित्रता और निर्मलता नहीं आएगी। आसन-प्राणायाम कितना ही क्यों न कर लो, लेकिन इनका भी वही प्रभाव होगा जो दवा का होता है। दवा खाकर रक्तचाप कम किया; जब तक दवा का असर रहा, सब ठीक, लेकिन जैसे ही दवा का असर खत्म हुआ, रक्तचाप फिर बढ़ गया। उसे कम करने के लिए फिर दूसरी गोली खा ली। इस प्रकार जिन्दगीभर दवा ही खाते रहते हैं।

वैचारिक, भावनात्मक, मानसिक और बौद्धिक शुद्धि जीवन में पवित्रता का प्रतीक है। शुद्धि से ही आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। घर में पूजा-पाठ तो सभी करते हैं, भगवान के किसी-न-किसी रूप को धूप-दीप दिखा देते हैं या फूल अर्पित कर देते हैं। हर रविवार को गिरजाघर में जाकर प्रार्थना कर लेते हैं या शुक्रवार को मस्जिद में जाकर नमाज अदा कर लेते हैं या सोमवार को मंदिर में जाकर घण्टी बजा देते हैं। चाहे सकाम दृष्टि से हो या निष्काम, पूजा-पाठ सभी करते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त भी एक अवस्था है, जिसमें अपने आपको इन बाह्य क्रियाओं तक

ही सीमित न रखकर, आन्तरिक पवित्रता लाने का प्रयास किया जाए। आन्तरिक पवित्रता का मतलब होता है, मन के अन्दर जो घृणित भाव हैं उनसे अपने आपको मुक्त करना। मुक्त होने का प्रयास ही शुद्धता की शुरुआत है। यह आध्यात्मिक जीवन का प्रथम सोपान है।

द्वितीय सोपान – ईश्वर प्रणिधान

आध्यात्मिक जीवन का दूसरा सोपान है, ईश्वर प्रणिधान – भगवान में श्रद्धा। चाहे तुम ईश्वर को साकार मानो या निराकार, चाहे उसे हजार रूपों में देखो या अव्यक्त मानो, लेकिन एक व्यवस्था, एक सत्ता है, जिससे जीवन का संचालन और संचार होता है। वही सत्ता विज्ञान में देश और काल के नाम से जानी जाती है। वह एक ऐसी सत्ता है जो सभी के भीतर व्याप्त है। जैसे श्वास और प्राण हर शरीर में व्याप्त हैं, वैसे ही वह सत्ता भी हर शरीर में व्याप्त है। कोई उसे आत्मा कहता है, कोई जीवात्मा, तो कोई परमात्मा की छाया। जैसे वायु संसार में सब जगह है, वैसे ही वह तत्त्व सभी चीजों में, सभी रूपों में व्याप्त है। शक्ति, ऊर्जा, प्रणव, नाद, बिन्दु और कला के रूप में; चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के रूप में; हर स्तर पर जो अनुभूति रहती है, वह उस अनुभूति की सजगता के रूप में अवस्थित है।

उस परमतत्त्व को हमारे मनीषियों ने विभिन्न नाम दिए हैं। नाम के द्वारा उस तत्त्व से तादात्म्य की स्थिति आती है। अगर आपको किसी से मिलना हो, किसी के समीप जाना हो तो उस व्यक्ति का नाम लेने से उसका चेहरा ख्याल आता है। इसी प्रकार जब हम भगवान का नाम लेते हैं, तब भगवान का उस नाम से जुड़ा हुआ चेहरा सामने आता है। नाम एक माध्यम बनता है, जिससे तादात्म्य की स्थिति आती है, सम्बन्ध जुड़ता है। उस सम्बन्ध से व्यक्ति का मनोबल, आत्मविश्वास एवं श्रद्धा बढ़ती है, और व्यक्ति अपने आपको हर झंझावात और दु:ख में संभाल लेता है। वह अपने आपको कभी निराश्रित अनुभव नहीं करता।

आन्तरिक पवित्रता और ईश्वर प्रणिधान, गंगा जी और राम जी – स्वामी शिवानन्द जी द्वारा बताए गए इन दो उपायों को हमें अपने जीवन में उतारने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। गंगा जी प्रतीक हैं पवित्रता की और राम जी प्रतीक हैं ईश्वर के। स्वामी शिवानन्द जी ने हम लोगों के लिए भगवान के छोटे नाम का ही चुनाव किया है, क्योंकि वह आसानी से याद रहता है। लम्बा नाम बोलने में आदमी भले ही कतराता है, लेकिन छोटे नाम को बहुत जल्दी याद कर लेता है! आज स्वामी शिवानन्द जी के जन्मोत्सव पर उनके इसी संदेश को आत्मसात् करना है।

गंगा दर्शन, शिवानन्द जन्मोत्सव, 8 सितम्बर 2008

शिवानन्द गीता – षोडशोऽध्यायः

ॐ

16 जनवरी, 1946

मैं सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए, सभी रोगियों के आरोग्य के लिए और सभी दिवंगत आत्माओं की शांति के लिए प्रार्थना और कीर्तन करता हूँ।

गंगा मैया में स्नान करते समय मैं उन सबके नाम की डुबकी लगाता हूँ जो इस पावन स्नान के लिये लालायित हैं।

भजन हॉल में मैं सभी धर्मों के संत-महात्माओं का गुणगान करता हूँ। ईसाई मतानुसार मैं 'ऑल सेंट्स डे' और 'ऑल सोल्स डे' मनाता हूँ।

ॐ ॐ ॐ!

शिवानन्द गीता – सप्तदशोऽध्याय:

ॐ

17 जनवरी, 1946

मैं निम्नलिखित महावाक्यों और सूत्रों पर निरन्तर मनन करता हूँ –

- *प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत् त्वमसि, अयं आत्मा ब्रह्म*
- *सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म, शान्तं शिवं अद्वैतम्*
- *अहं आत्मा गुडाकेशः, अहं आत्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः*
- *ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः*
- *अकर्ता अभोक्ता असंग साक्षी*
- *अजो नित्यः शाश्वतोऽयम् पुराणो*
- *ज्योतिषामपि तत् ज्योतिः*

शिवानन्द गीता – अष्टदशोऽध्यायः

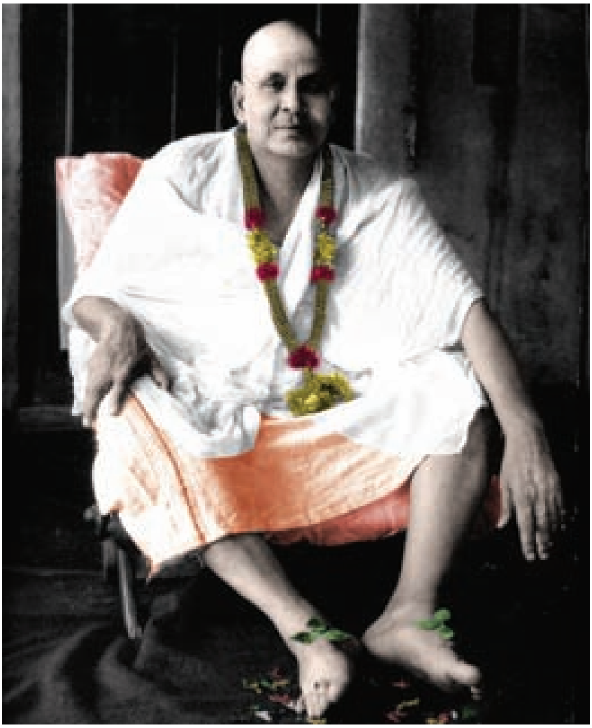

ॐ

18 जनवरी, 1946

पतितों को उठाना, नेत्रहीनों का मार्गदर्शन करना, पीड़ितों को दिलासा देना, दुःखियों के चेहरे पर मुस्कान लाना और इस हेतु अपना सर्वस्व लुटा देना – यही मेरे जीवन का आदर्श है।

अपने हृदय और आत्मा की गहराई से ईश्वर में सम्पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और भक्ति रखना; अपने पड़ोसियों से आत्मवत् प्रेम करना; गउओं, मूक पशुओं, स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा करना – यही मेरे ध्येय हैं।

मेरे जीवन का मूलमंत्र है – प्रेम। मेरा लक्ष्य है – सहज समाधि अवस्था अर्थात् सर्वोच्च चेतना में सहज रूप से अखण्ड निवास।

शिव का शिष्य

शिव के शिष्य में दिव्य गुण हैं। वह उदार, सज्जन और विनम्र है। वह अतिशय दयालु है। वह कभी माँगता नहीं, केवल देता और देते जाता है। वह सबसे मिलजुलकर रहता है, सबकी सेवा करता है और सबसे प्रेम करता है। वह भगवान का नाम भजता है, कीर्तन करता है। वह सेवा और कर्मयोग में दक्ष है। वह मंदिर में पूजा करता है, रुद्र पाठ करता है। जहाँ भी जाता है, अखण्ड कीर्तन शुरू कर देता है। वह आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंधों का अभ्यास करता है। वह समग्र योग का साधक है। वह विचार नियंत्रण की कला जानता है। वह योग एवं वेदान्त में दक्ष है। वह हमेशा व्यावहारिक वेदान्ती रहता है।

वह भोजन पकाता, प्रूफ रीडिंग और टाइपिंग करता, नर्स और डॉक्टर का काम करता तथा व्याख्यान देता है। वह लेखक और पत्रकार भी है। वह योग एवं वेदान्त की कक्षाएँ लेता है। वह सरल और विनम्र है। वह सबको 'महाराज' कहता और 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर अभिवादन करता है। वह पहले अभिवादन करता है। वह भावपूर्वक गरीबों की सेवा करता है। वह हर प्राणी का सम्मान करता है। वह कभी अभद्र और कठोर वचन नहीं कहता।

उसके भीतर सभी धर्मों और मतों के लिए पूर्ण स्वीकृति का भाव है। वह थोड़ा बोलता है। वह बहुत शान्त, किन्तु हमेशा गतिशील रहता है। कर्म उसके लिए पूजा है। उसके लिए कर्म, भक्ति, योग और ज्ञान अविभाज्य हैं। वह भक्त, योगी और ज्ञानी है, जो दूसरों की भलाई करने में व्यस्त रहता है। अब तुम उसे आसानी से पहचान सकते हो और स्पष्ट रूप से समझ सकते हो।

– *स्वामी शिवानन्द सरस्वती*

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग साधना माला 1

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 203, ISBN: 978-93-81620-58-8

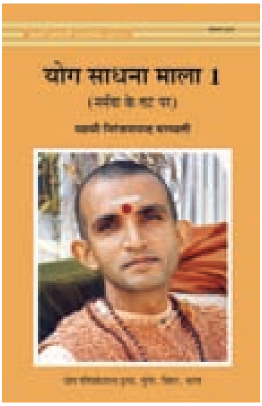

नया प्रकाशन

'योगाभ्यास गिने-चुने व्यक्तियों के लिए नहीं, सभी के लिए है। योग मनोविज्ञान ही नहीं, आत्मविज्ञान भी है, जिससे सभी प्रकार के तनाव, क्लेश और दु:ख समाप्त हो जाते हैं। योग-मार्ग में आगे बढ़ने के लिए कुछ छोड़ना नहीं पड़ता, योग में तो केवल पाना-ही-पाना है।'

वर्ष 1993 एवं 1994 में संस्कारधानी जबलपुर में आयोजित योग सम्मेलनों में स्वामीजी ने योग के विभिन्न पक्षों पर ओजस्वी एवं प्रेरक प्रवचन दिये और दैनिक जीवन में इसकी उपयोगिता समझाकर जनमानस का आह्वान किया कि वे इसे अपने जीवन में अवश्य स्थान दें। विद्यार्थी, गृहस्थ, जिज्ञासु अथवा साधक – यह ग्रन्थ सभी के लिए समान रूप से अनुशीलन करने योग्य है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.net

इस ब्लॉगस्पॉट पर प्रतिदिन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर एक नया सत्संग उपलब्ध रहता है।

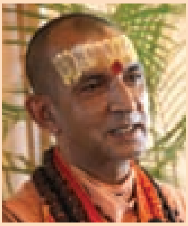

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

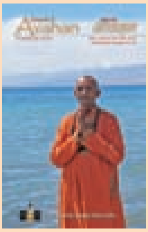

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

विश्व योग सम्मेलन ब्लॉगस्पॉट

www.wyc2013.com पर विश्व योग सम्मेलन में भाग लेने, सम्मेलन के कार्यक्रम तथा बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती गतिविधियों से सम्बन्धित जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

• Registered with the Department of Post, India
Under No. HR/FBD/298/13-15
• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2014

जनवरी 1	श्री हनुमान चालीसा
फरवरी 1-4	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 1-मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 4	बसंत पंचमी महोत्सव
	बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 14	बाल योग दिवस
मार्च 1-21	योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र (हिन्दी)
मार्च 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–दमा (हिन्दी)
अप्रैल 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–मधुमेह (हिन्दी)
जून 1-अगस्त 25	त्रैमासिक योग विज्ञान और जीवनशैली सत्र (हिन्दी)
जुलाई 12	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2014-मई 2015	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-21	योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र (अँग्रेजी)
अगस्त 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–गठिया एवं पीठदर्द (हिन्दी)
सितम्बर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–सामान्य (हिन्दी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्म दिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक माह के 5वें और 6वें दिवस	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक माह के 12वें दिवस	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।